RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

# संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 58 अंक : 08 प्रकाशन तिथि : 25 जुलाई कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 अगस्त 2021

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

प्रयास एकता के तेरे देश नहीं भुलाएगा।
तेरे बिना बिछुड़े हुओं को कौन एक बनाएगा।।
टूटी हुई है श्रृंखला, ये कड़ी तो जोड़ के जा।। लौट के आ रे! लौट के आ!

# हार्दिक बधाई ! राजस्थान प्रशासनिक सेवा 2018 परीक्षा परिणाम में 281वीं रेंक

विश्वजीत सिंह जैतावत

पाली जिले के सोजत तहसील के सारंगवास निवासी विश्वजीत सिंह जैतावत पुत्र डॉ. पूरण सिंह जैतावत, उप-निदेशक, कृषि विपणन विभाग, राजस्थान सरकार का राजस्थान प्रशासनिक सेवा 2018 के परीक्षा परिणाम में 281वीं रेंक में चयन होने पर पूरे क्षेत्र के राजपूत समाज एवं ग्राम वासियों में खुशी की लहर व्याप्त है।

-: शुभेच्छु :-

विशन सिंह, हरिसिह, जबर सिंह S, हिम्मत सिंह, नरपत सिंह S, भबुत सिंह, नैन सिंह, उदय सिंह, जवान सिंह, कान सिंह, मांगू सिंह, लक्ष्मण सिंह G, शेर सिंह, दलपत सिंह, महावीर सिंह, गजेन्द्र सिंह M, पूरण सिंह G, किशन सिंह, कर्णवीर सिंह, पूरण सिंह S, पूरण सिंह D, पुष्पेन्द्र सिंह J, नरपत सिंह **(ASP)**, लक्ष्मण सिंह K, कालूसिंह L, महेन्द्र सिंह G, सूर्यभान सिंह, भगवान सिंह S, गजेन्द्र सिंह S, कालूसिंह K, श्रवण सिंह K, श्रवण सिंह V, प्रेम सिंह D, विजय सिंह, प्रेमसिंह L, इन्द्रविजय सिंह, अमर सिंह दूकान, संग्राम सिंह, शिवराज सिंह, मान सिंह, देवेन्द्र सिंह समस्त जैतावत परिवार एवं ग्रामवासी सारंगवास, सोजत ( पाली )

बहादुर सिंह सारंगवास, स्वयं सेवक, श्री क्षत्रिय युवक संघ

सौजन्य से गजेन्द्र सिंह पुत्र श्री माधव सिंह सारंगवास ( हाल हैदराबाद )

# संघशक्ति

4 अगस्त, 2021

वर्ष : 57 अंक : 08

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क – एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये


## विषय – सूची


| | | |
|---|---|---|
| ☞ समाचार संक्षेप | ✍ | 04 |
| ☞ चलता रहे मेरा संघ | ✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर | 07 |
| ☞ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में) | ✍ श्री चैनसिंह बैठवास | 08 |
| ☞ मेरी साधना | ✍ श्री धर्मेन्द्रसिंह आम्बली | 10 |
| ☞ चरित्र-निर्माण में संस्कारों का अवदान | ✍ श्री रामगोपाल | 15 |
| ☞ सुदामा का स्वागत | ✍ श्री सुदर्शनसिंह चक्र | 17 |
| ☞ दुर्गादास री अपणायत | ✍ श्री नारायणसिंह 'शिवाकर' | 21 |
| ☞ संगठन | ✍ श्री गिरधारीसिंह डोभाड़ा | 22 |
| ☞ छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को | ✍ स्वामी जगदात्मानन्द | 25 |
| ☞ विचार-सरिता (चतुषष्टिक लहरी) | ✍ विचारक | 30 |
| ☞ बुढ़ापा ही जीवन है | ✍ सवाईसिंह धमोरा | 32 |
| ☞ अपनी बात | ✍ | 34 |

# समाचार संक्षेप

## संघप्रमुख मनोनीत :

मई, 2020 में ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण शिविर में श्री क्षत्रिय युवक संघ के संघप्रमुख का चुनाव होना था। कोरोना महामारी के कारण शिविर नहीं हो सका अत: संघप्रमुख का चुनाव भी नहीं हो सका। महामारी के चलते आगे भी शिविर की संभावना नहीं लग रही थी अत: आलोक आश्रम में आयोजित केन्द्रीय बैठक में 9 जनवरी, 2021 को सर्वसम्मति से संघप्रमुख माननीय भगवानसिंह जी को संघप्रमुख मनोनीत करने के लिये अधिकृत किया गया। संघप्रमुखश्री ने मई 2021 तक स्थिति सुधरने का इन्तजार किया। स्थिति में सुधार नहीं हुआ अत: 4 जुलाई, 2021 को आयोजित केन्द्रीय बैठक में संघप्रमुख श्री ने संचालन प्रमुख श्री लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास को संघप्रमुख मनोनीत किया।

## सम्राट पृथ्वीराज चौहान जयन्ती :

हमारे पूर्वज महापुरुषों की जयन्ती आज हम एक जगह बैठकर नहीं मना पा रहे हैं, परन्तु वर्चुअल माध्यम से जयन्ती मनाकर दूर-दूर बैठे विद्वानों के विचार इस माध्यम से सुन सकते हैं। जयन्ती कार्यक्रमों की कड़ी में सम्राट पृथ्वीराज चौहान और सम्राट हर्षवर्धन की जयन्ती 7 जून को वर्चुअल माध्यम से मनाई गई। हर्षवर्धन प्राचीन भारत के अन्तिम महत्त्वपूर्ण हिन्दु शासक थे। ऐसे सबल और कुशल शासक की मृत्यु के पश्चात लगभग चार शताब्दी तक एक केन्द्रीय राजनैतिक सत्ता का अभाव रहा। मध्यकालीन इतिहास के प्रारम्भ में पृथ्वीराज चौहान ने उत्तर भारत में एक सुदृढ़ और सशक्त शासन स्थापित किया।

पृथ्वीराज के सामन्त चामुंडराय के मात्र एक तीर चलाने के निर्णय को सही नहीं ठहराया जा सकता लेकिन पृथ्वीराज द्वारा उस एक तीर से हैहुलराय को मारने के लिये चामुंडराय को कहना एक आदर्श निर्णय कहा जा सकता है। देशद्रोह की परम्परा पर अंकुश लगाना अति आवश्यक है। गौरी को क्षमा करना उनका व्यक्तिगत गुण हो सकता है पर गोरी मात्र उनका ही नहीं, पूरे समाज व देश का शत्रु था उसको क्षमा करने का उनको अधिकार नहीं था। चामुंडराय का यह निर्णय कि मैं केवल एक ही तीर चलाऊंगा, उचित नहीं कहा जा सकता। अचूक तीरंदाज थे तो हैहुलराय और गौरी दोनों पर तीर चलाना समय की आवश्यकता थी, उसमें चूक से देश को कितना नुकसान उठाना पड़ा। इतिहास की जानकारी से उसकी श्रेष्ठताओं का अनुकरण करने और कमियों से सावधान रहने की प्रेरणा मिलती है।

तराइन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज को बंदी बनाकर गजनी ले जाने की बात फैलाई गई है जो सत्य नहीं है। भारतीय तथा फारसी ग्रन्थों ने पृथ्वीराज की मृत्यु अजमेर में होना बताया है। इसी प्रकार गौरी को महाराजा जयचंद ने भारत पर आक्रमण करने को आमंत्रित किया था, यह बात भी सत्य नहीं है, अप्रमाणिक है और भ्रमपूर्ण है। पृथ्वीराज के जीवन पर विस्तार से वक्ताओं ने जानकारी दी।

वरिष्ठ इतिहासकार डॉ. राजेन्द्रसिंह खंगारोत, इतिहासकार वीरेन्द्रसिंह मेड़तिया, कांग्रेस के वरिष्ठ नेता धर्मेन्द्रसिंह राठौड़ और क्षत्रिय युवक संघ के संचालन प्रमुख लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास ने कार्यक्रम में विस्तार से अपने विचार प्रकट किए।

## ले. ज. हणुतसिंह स्मृति कार्यक्रम :

बालोतरा संभाग ने संत सैनिक के नाम से प्रतिष्ठित ले. जनरल हणुतसिंह जसोल की स्मृति में आयोजित वर्चुअल कार्यक्रम के माध्यम से भक्ति व शक्ति के जीते, जागते रूप के जीवन वृतांत को सब तक पहुँचाया। दुश्मन देश ने भी जिनको 'फक्र ए हिन्द' की उपाधि से विभूषित किया वे केवल कुशल सेनानायक ही नहीं थे, आध्यात्मिक क्षेत्र के साधक के रूप में ऊँचाइयाँ छूने वाले संत भी थे। 'महावीर चक्र' से सम्मानित ले. जनरल हणुतसिंह के जीवन पर महंत नारायण भारती जी, ठा. नाहरसिंह जसोल, नृपेन्द्रकरणसिंह व चन्दनसिंह चांदेसरा ने विस्तार से प्रकाश डाला।

## चार महापुरुषों की जयन्ती :

गुजरात में महाराणा प्रताप की जयन्ती के साथ वहाँ

के इस युग के चार महापुरुषों की जयन्ती भी मनाई जाती रही है। वे हैं,-हरिसिंहजी गढुला, चन्द्रसिंहजी भाडवा, हरभमजी राज मोरबी और मनुभा चेर।

संघ के वरिष्ठ स्वयंसेवक प्रवीणसिंह सोळिया ने हरिसिंहजी गढुला के राष्ट्रभक्ति परक कार्यों की चर्चा की। चन्द्रसिंह भी भाडवा ने जूनागढ के भारत विलय में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, कृषि भूमि को सुरक्षित करवाने हेतु आन्दोलन किया। भूस्वामी आन्दोलन में ये दोनों जब राजस्थान आए तो क्षत्रिय युवक संघ के कार्य से प्रभावित हुए और संघ को गुजरात में लाए। हरिसिंहजी निरन्तर संघ के विस्तार हेतु सक्रिय रहे।

वरिष्ठ स्वयंसेवक अजीतसिंह धोलेरा ने हरभमजी राज का जीवन वृतांत प्रस्तुत करते हुए कहा कि राजपूत बच्चों की शिक्षा हेतु छात्रावास 1909 में प्रारम्भ किया। कालांतर में अंग्रेज सरकार के उच्च पद को छोड़कर समाज कार्य में लगे और समाज को भविष्य की चुनौतियों हेतु तैयार करने में जुटे। मनुभा चेर ने गाँव-गाँव घूमकर समाज को स्वयं खेती करने को प्रेरित किया। चुड़ासभा राजपूत समाज का संगठन बनाया। महात्मा गाँधी ने भी उनके कार्यों में सहयोग देने हेतु सरदार वल्लभभाई पटेल को भेजा था।

## जांगल प्रदेश के राजवंश :

वर्तमान बीकानेर, चूरू, हनुमानगढ़, गंगानगर तथा हिसार व नागौर का कुछ भाग जंगल प्रदेश कहलाता था। बीका जी द्वारा बीकानेर की स्थापना से पूर्व इस प्रदेश में जो क्षत्रिय राजवंश थे उनकी जानकारी अल्प है। इसलिए क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन ने एक वर्चुअल कार्यक्रम आयोजित कर इस जानकारी को पहुँचाया। 2 जून को आयोजित इस कार्यक्रम में प्रमुख क्षत्रिय वंश जोहियों के बारे में आदित्यसिंह वेरा जैतपुरा ने विस्तार से जानकारी दी। प्राचीन भारत के प्रसिद्ध क्षत्रिय वंश यौधेय का अपभ्रंश जोहिया है। लोकेश्वरसिंह महरोली ने इस क्षेत्र में लम्बे समये तक शासन करने वाले सांखला व चाहिल (चोयल) वंश के बारे में विस्तार से जानकारी दी। सांखला परमारों की शाखा है और चाहिल चौहानों की। लोकदेवता गोगाजी इसी चाहिल खांप के चौहान थे। जांगल प्रदेश में ही अपना अलग प्रभुत्व रखने वाले मोहिलों के बारे में खींवसिंह सुल्ताना ने प्रकाश डाला। मोहिल चौहानों की शाखा है। कार्यकृम में बताया गया कि हमारे ऐतिहासिक पुरुषों और इतिहास की जानकारी नहीं रखने के कारण अन्य लोग हमारे इतिहास को विकृत करने में लगे हैं अत: हमें प्रमाण सहित सही तथ्य रखने के लिए इतिहास की गहन जानकारी रखनी चाहिए।

## प्रताप जयन्ती :

गुजरात क्षेत्र की मेजबानी में महाराणा प्रताप की जयन्ती ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया, तदनुसार 13 जून को मनाई गई। वर्चुअल माध्यम से मनाए गये इस कार्यक्रम में संघप्रमुख माननीय भगवानसिंह जी के अलावा वरिष्ठ स्वयंसेवक अजीतसिंह जी धोलेरा, संत स्वामी धर्मबन्धुजी, राज्यसभा सांसद शक्तिसिंहजी गोहिल तथा गुजरात के शिक्षामंत्री भूपेन्द्रसिंह चुड़ासभा ने महाराणा प्रताप पर अपने विचार रखे।

महाराणा प्रताप को सिरफिरा और अकबर को महान बताने वाले लोगों ने हमारे देश के इतिहास को बिगाड़ा है। लम्बे समय तक संघर्ष कर स्वतंत्रता और राष्ट्रीय स्वाभिमान हेतु किए गये त्याग व बलिदान की जो कीमत करना नहीं जानते वे ही प्रताप को सिरफिरा कह सकते हैं। महाराणा प्रताप का जीवन तो संघर्ष, प्रेम, करुणा, समभाव जैसे गुणों से ऐसा आकर्षक जीवन था कि इतने लम्बे संघर्ष में हर प्रकार की मुसीबतों को सहन करते हुए भी राज्य की प्रजा सदैव उनकी सहयोगी बनी रही। महाराणा प्रताप का संघर्ष हिन्दु मुसलमानों का संघर्ष नहीं था। वह तो एक विदेशी आतताई के विरुद्ध स्वतंत्रता का संघर्ष था। क्षत्रिय स्वयं के लिये नहीं बल्कि अन्यों के लिये, देश के लिये, संस्कृति व मानवता के लिये लड़े हैं, इसीलिए हमारा इतिहास अमर हो गया। हम प्रताप के गुणों को अपने जीवन में उतार सकें, इसीलिए श्री क्षत्रिय युवक संघ अस्तित्व में आया और लगातार अपने कार्यक्रमों द्वारा युवकों का जीवन बदलने का प्रयास कर रहा है। बालिकाओं के लिए भी प्रशिक्षण प्रारम्भ हुआ है ताकि वे सांस्कृतिक माताएँ बनकर अगली पीढ़ी को संवार सकें।

महाराणा प्रताप से जुड़ी कुछ भ्रान्तियों का भी निराकरण किया गया। महाराणा प्रताप को घास की रोटी खाने की नौबत आई यह बात असत्य है। अमरसिंह की आयु उस समय युवावस्था थी अत: उसे 'नानो सो अमर्‌यो' कहना भी गलत है। महाराणा प्रताप ने कभी कोई पत्र अकबर को नहीं लिखा। भामाशाह उनका एक सेनानायक था और मुगलों के थानों को लूटकर लाए गये धन को महाराणा को सौंपा था, व्यक्तिगत धन नहीं था।

मेवाड़, वागड़ व मालवा संभाग में भी संघ की ओर से वर्चुअल माध्यम से महाराणा प्रताप तथा झाला मानसिंह की जयन्ती का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। झाला मान की जयन्ती ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीय को थी जो साथ ही मनाई गई।

इतिहासज्ञ प्रतापसिंह तलावदा, शिक्षाविद हनुमानसिंह राठौड़, आचार्य ज्ञानानन्द जी महाराज, गीतकार सोहनलाल चौधरी, गुरु मैया भुवनेश्वरी पुरी, लोकेन्द्रसिंह ज्ञानगढ, डॉ. अनीता राठौड़ कारोई ने अपने विचार विस्तार से प्रस्तुत किए।

महाराणा प्रताप समारोह समिति जयपुर द्वारा भी प्रताप जयन्ती वर्चुअल माध्यम से मनाई गई। माननीय संघप्रमुख भगवानसिंह जी, केन्द्रीय मंत्री गजेन्द्रसिंह शेखावत, बीजेपी प्रदेश अध्यक्ष सतीश पूनिया, जयपुर शहर सांसद रामचरण बोहरा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रान्त प्रचारक शैलेन्द्र कुमार वक्ता के रूप में उपस्थित थे जिन्होंने विस्तार से महाराणा प्रताप के जीवन पर प्रकाश डाला।

## रामसिंहजी स्मृति दिवस :

जैसलमेर के बसियां क्षेत्र के राजपूतों के पूर्वज रामसिंहजी का स्मृति दिवस मनाया गया। मुख्य वक्ता के रूप में संघ के केन्द्रीय कार्यकारी देवीसिंहजी माडपुरा ने कहा कि हमारे पूर्वजों ने इतिहास बनाया मगर इतिहास लिखने में रुचि नहीं रखी। परिणामत: कालांतर में जनश्रुतियों पर आधारित इतिहास धीरे-धीरे लोप होता गया। संघ के अनुसार जिनका जीवन प्रेरणादायी है, उन्हें याद करते रहना चाहिए। वीरता, त्याग, न्यायप्रियता के धनी हमारे इन पूर्वजों का हमें अनुकरण करने का प्रयास करना चाहिए। वरिष्ठ स्वयंसेवक बाबूसिंह बेरसियाला ने उनके परिवार में हुये वीर पुरुषों व तपस्वियों का परिचय दिया। दीपसिंह रणधा ने छंद व गीत प्रस्तुत किया। मेगूदान झिणकली ने भाटियों के विरुद बखान किए। गिरधरसिंह जोगीदासकागांव ने छतरी पुनर्निर्माण के सम्बन्ध में बताया। तारेन्द्रसिंह ने संचालन किया।

## भ्रातृत्व प्रेम के आदर्श :

संघ के हीरक जयन्ती वर्ष में बालोतरा संभाग द्वारा सिवाना के शासक रहे राव जैतमाल की स्मृति में वर्चुअल कार्यक्रम आयोजित हुआ। अपने बड़े भाई रावल मल्लीनाथ जी के पुत्र जगमाल द्वारा उन पर प्राणघातक हमला किया गया। मरणासन्न अवस्था में उन्होंने अपने 12 पुत्रों से यह वचन लिया कि इस हमले का बदला लेने वे मेरे बड़े भाई रावल मल्लीनाथजी की संतानों से कोई वैर नहीं रखेंगे। उनके इस अनूठे भ्रातृत्व प्रेम ने परिवार को कलह से बचा लिया। वे शूरवीर भी थे तो आध्यात्मिक पुरुष भी थे। वरिष्ठ स्वयंसेवक कृष्णसिंह रानीगांव ने यह कहा। इतिहासकार राजेन्द्रसिंह कविया ने उनकी भक्ति और शक्ति की बात कही। डॉ. नगेन्द्रसिंह भाटी, फतेहसिंह पायला कलां ने उनके जीवन और उनकी संतानों सम्बन्धी जानकारी दी।

## संघप्रमुखश्री का जैसलमेर प्रवास :

27 जून को माननीय संघप्रमुखश्री जैसलमेर स्थित संभागीय कार्यालय तनाश्रम में जैसलमेर क्षेत्र के स्वयंसेवकों से मिले। इस वर्तमान परिस्थिति में संघ की गतिविधियों, वर्चुअल कार्यक्रमों आदि की जानकारी ली। सभी के कुशल क्षेम जाने। कैसी भी परिस्थिति आ जाए, रुकना नहीं है, चलते रहना है। संघ साहित्य में समाज चरित्र सम्बन्धी तथा साधना सम्बन्धी जो जानकारियाँ उपलब्ध है, वे बड़ी उपयोगी हैं। उनको हमारे शिक्षण का अंग बनाना है। हम प्रेम पूर्वक खुशी-खुशी काम करें, विपरीतताओं से घबराकर रोते-रोते कार्य करने की आवश्यकता नहीं। जो भी स्थिति है, उसे परमेश्वर की देन मानकर स्वीकार करें और आगे बढ़ते रहें। परिस्थिति के गुण दोष खोजने की आवश्यकता नहीं, आलोचनाओं से भी बचें।

# चलता रहे मेरा संघ

**{विशेष मिलन शिविर माणकलाव में दिनांक 15.6.2004 को संघप्रमुख माननीय श्री भगवानसिंह जी द्वारा उद्‌बोधित विदाई संदेश का संक्षेप।}**

श्री क्षत्रिय युवक संघ क्या है, इसको जितना आप जानते हैं, उतना ही मैं जानता हूँ। संघ कैसा कार्य कर रहा है, इस सम्बन्ध में भी जितना आप जानते हैं, उतना ही मैं जानता हूँ। संघ को आगे क्या करना है इस सम्बन्ध में भी मेरी जानकारी उतनी ही है जितनी आपकी है। क्या वर्तमान और क्या भविष्य के बारे में शायद आप जितना जानते हैं, उतना मैं जानता भी नहीं। फिर भी अभिनय इस प्रकार कर रहा हूँ जैसे सब कुछ जानता हूँ, प्रमाणित बात कह रहा हूँ। मैं मेरे बारे में स्पष्ट हूँ और आप भी अपने बारे में स्पष्ट हैं। हमें दूसरा कोई प्रमाण पत्र दे, इसकी कोई आवश्यकता नहीं। हम स्वयं जानते हैं कि कितना कुछ किया और कितना कुछ कर सकेंगे। दूसरा कोई इस बारे में कुछ नहीं बता सकता। भगवान की चलाई हवा में हम सभी बह रहे हैं किन्तु भूलवश कई बार हम मान बैठते हैं जैसे किसी काम का कारण हम हैं।

आपको बुलाता हूँ, कई बार साथी पूछते हैं-क्या योजना है? कार्यक्रम बना लिया क्या? पागल की तरह सुनता रहता हूँ। क्या उत्तर दूं? कौन बताए? जब से समझ आई तब से मैंने तो कुछ नहीं किया। मेरी कोई योजना नहीं। या तो कोई शक्ति है जो प्रेरित करती है, या आप लोग जो कहें वही सही है। तो योजना आपकी है या परमेश्वर की है, मेरी कोई योजना नहीं। आप मेरी प्रशंसा करते हैं या गालियाँ देते हैं तो भी ना नहीं करता। न तो गालियों को मैंने लिया और न प्रशंसा ही प्रभावित करती है।

कैसे स्वागत करूँ, कैसे विदाई दूँ यह मैं नहीं जानता। जैसे मेरे से करवाया जाएगा मैं कर लूंगा। आप आएं तो स्वागत और यदि आप न आएं तो भी ठीक। श्री क्षत्रिय युवक संघ मेरे द्वारा नहीं चलता। फिर भी वह सत्ता स्वागत भी करती है, विदाई भी देती है, इन्तजार भी करती है, जो श्री क्षत्रिय युवक संघ को चला रही है। मैं अधिकारहीन, कर्तव्यहीन, गुणहीन, अवगुणहीन जैसा भी हूँ आपका हूँ, इतना जरूर सोचता हूँ। यह बन्धन है या मुक्ति पर साथ रहना अच्छा लगता है, जाना अच्छा नहीं लगता। आपके सिवाय अन्य किसी ने न मैं कुछ कहने जाता हूँ, न सुनने जाता हूँ। अन्यों की भी सुनता हूँ पर जो स्थान आपका है वह दूसरों का नहीं। आपके कहने से ही करता हूँ। न मैं बुलाने वाला न मैं आने वाला। अत: न दोष न प्रशंसा। क्या कहा जाए, मुझे पता नहीं। क्या कह दिया, मुझे पता नहीं।

पत्थर पिघल रहे हैं। यह किसका पानी है। किसी और की आँख का पानी है, हम तो परवश हैं, हम तो विवश हैं। 4-5 दिनों में जिस जोश से देख पाए, अहोभाव जागृत हुआ है। ऐसी बातें जहाँ करते हैं वह स्थान पवित्र हो जाता है। हमारी बातों का प्रसारण यहाँ हवा में होता रहेगा। श्री क्षत्रिय युवक संघ यदि पवित्र कार्य है तो आयोजकों के हृदय में पवित्रता आती है। जो आयोजन करते हैं, उनको लाभ मिलता है। कृतज्ञता का भाव इन्सानियत है। शब्दों से चाहे प्रकट न होता हो पर हम कृतघ्न नहीं। जो आयोजन करते हैं, उनका खर्चा हमारे ऊपर ऋण है, उसे हमें चुकाना है। कर्जा पैसों का या मेहनत का नहीं कर उनकी अपेक्षाओं की पूर्ति का है। गफलत दूर हो जाए, साधना जग जाए, हमारी यात्रा प्रारम्भ हो जाए, यही उस कर्जे की अदायगी है। भौतिक प्रदर्शन अदायगी नहीं।

मैं श्रेय लूं तो जन्म-जन्म तक उसका कर्ज उतार नहीं सकता। मेरी सलाह को आप आज्ञा मानते हैं। कितना भारी कर्जा है, युगों के श्रम से भी उऋण नहीं हो सकता। मेरे पास देने को कुछ नहीं। पर न कुछ मैंने लिया, न कुछ मैंने दिया। श्री क्षत्रिय युवक संघ ने आपको बुलाया, वही आपको विदाई दे रहा है। बिछुड़ने पर प्रभावित होना स्वाभाविक है। संघ आपका है और मैं भी आप में से एक हूँ, संघ को जैसे चाहें, चलाएँ।

**(शेष पृष्ठ 33 पर)**

गतांक से आगे

# पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

## ''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

गीता का उद्देश्य युग परिवर्तन है। पूज्यश्री तनसिंहजी ने गीता के उद्देश्य को ही अपना उद्देश्य बनाकर विचार क्रान्ति की बात कही है और श्री क्षत्रिय युवक संघ इसी उद्देश्य को लेकर समाज में कार्यरत है। आज समाज में गीता ज्ञान प्रसार की आवश्यकता है। गीता ज्ञान को भीतर उतारने के लिये अर्जुन और कृष्ण के जो अलौकिक सम्बन्ध थे, वैसे सम्बन्धों की आवश्यकता है यानी अर्जुन और कृष्ण में जो सखा भाव था, वैसे सखाभाव की आवश्यकता है, इसलिए पूज्य श्री तनसिंहजी ने सच्चे सखाभाव के सृजन यानी निर्माण पर जोर दिया। अर्जुन भगवान को सही रूप में सखा ही मानता था। इस सखा भाव के कारण ही गीता का ज्ञान अर्जुन के अन्त:करण की भीतरी गहराइयों में उतरा।

सखा भाव के निर्माण में दो बातों का होना जरूरी है- जिसमें पहली बात-दोनों में सच्चा प्रेम व एक दूसरे के प्रति अटल विश्वास होना जरूरी है। दूसरी बात-एक दूसरे के प्रति आत्म समर्पण का भाव हो और वही भाव श्रद्धा पैदा करता है।

सखा भाव के निर्माण की आवश्यकता में जिन बातों का ध्यान रखा जाना है, उनका मार्मिक विवेचन करते हुए पूज्य श्रीतनसिंहजी ने जो कहा, उन्हीं की जुबानी–

''कलियुग के भौतिकवादी युग में गीता का मर्म समझना अथवा समझाना कठिन है, किन्तु कृष्णार्जुन की भाँति हम सखा भाव का निर्माण कर देते हैं, तो गीता हमारे सखाओं के लिए बहुत सरल बन जायेगी। अत: गीता-ज्ञान के प्रसार के लिए गुरुडम का विनाश कर सच्चे सखा भाव व आत्मीयता का निर्माण करना होगा। सखा भाव के निर्माण की पहली आवश्यकता है-सम्मान के बाह्याडम्बर, पारस्परिक दूरी व भय को दूर कर सच्चा प्रेम स्थापित करना। नेताओं की जय बोल कर, गले में मालाएँ डालकर, भारत केसरी और महर्षियों की व्यर्थ उपाधियाँ देकर, हम हमारे ही समाज में नेताओं के अलग समाज की नींव डालते हैं। समाज का कार्यकर्ता नेता बनने की फिराक में अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारता है और सखा बनकर समाज के जन-जीवन का आवश्यक महत्त्वपूर्ण और अकाट्य अंग बन जाता है। सम्मान के यह बाह्याडम्बर कार्यकर्ता के अनुगमनीय चरित्र पर पर्दा डालकर उसे केवल प्रदर्शन का घोड़ा बनाते हैं, जो घोड़ा न तो सवारी में काम देता है और न भार वहन करने में। हमारे समाज को ऐसे 'कोतल घोड़ों' की आवश्यकता नहीं है, बल्कि आवश्यकता है, परिस्थितियों व परिणामों की गोलियों के बीच जीवन-संघर्ष के युद्ध क्षेत्र में चेतक की भाँति कर्तव्य पालन करने वाले और सदैव आदर्श बनने वाले उत्तरदायी मित्रों की, जो हमें बाँह पकड़ कर्तव्य पालन में सहयोग दे सकें।

''हम उस मित्र से क्या सीख सकेंगे, जो हमारे सामने भिन्न-भिन्न रूप में बन-ठनकर आता है और दूसरों के सामने दूसरे रूप में। हम ज्ञान देने वाले उस मित्र को चाहते हैं जिसका जीवन एक खुली हुई पुस्तक हो, जिसके हृदय में समाज के प्रत्येक व्यक्ति के दर्द की धड़कन तड़फ रही हो, जो स्वयं इतना अमृतमय हो, कि जो भी उसके पास जाए, यही प्रभाव लेकर आवे कि उसकी मुझ पर अत्यधिक कृपा है। अर्जुन तभी बन सकेंगे, जब कृष्ण जैसे परमहितैषी और अंतरंग नेता हमारे आदर्श बनकर आवेंगे। नेता सखा-भाव का मूर्त रूप हो, तभी वह गीता-ज्ञान की विचार-क्रान्ति समाज में ला सकता है।

''सखा भाव के निर्माण की दूसरी आवश्यकता है-आत्मसमर्पणमयी श्रद्धा के निर्माण की, जो गुरुडम न बनकर मर्यादित समानता का रूप ले। समाज में चरित्र की प्रौढ़ता

ही इसका उपाय है। सखा भाव के विकार उद्दण्डता, अवज्ञा, उपेक्षा एवं मर्यादा विहीनता है, जिन्हें पनपने से रोकना है। समाज के कार्यकर्ता के चरित्र में इतना बल और प्रभाव होना चाहिए कि जिसका अनुकरण अनुचर जीवन की सहज उच्छृंखलता को मर्यादित कर सके। योग्य नेता के साथ योग्य अनुचर की भी उतनी ही आवश्यकता है। प्राय: नेता का स्नेह पाकर अनुचर अपनी मर्यादाएँ खो देता है। मर्यादा भ्रष्ट होकर अनुचर सखा-भाव की दुहाई देकर वास्तव में अपने भीतर अनुशासनहीनता, अश्रद्धा और उद्दण्डता का पोषण करता है। इसलिए नेता को जहाँ आदर्श मित्र बनना चाहिए, वहाँ अनुचर को मित्र के प्रति श्रद्धा भाव रखना चाहिए। कृष्ण और अर्जुन के समस्त व्यवहार में अर्जुन को हम कहीं अमर्यादित नहीं पाते हैं- वह संपूर्ण श्रद्धा से श्रीकृष्ण को अपनी शंकाएँ जिज्ञासापूर्वक पूछता है। गीता का ज्ञान ही नहीं, किसी भी ज्ञान को प्रचारित करने के लिये इसी प्रकार के सखा-भाव की आवश्यकता है। जब तक अर्जुन की भाँति श्रद्धाभाव से मैत्री नहीं की जाती, तब तक प्राय: लोग भाषणों को कुतूहलवश सुनते हैं और बाद में उन पर टीका टिप्पणी किया करते हैं। शिक्षण में भी आज इस तथ्य को स्वीकार किया जा रहा है, कि शिक्षक में मैत्रीभाव होना चाहिए और शिक्षार्थी में श्रद्धा भाव। जब तक इस प्रकार के अनुपम सखा भाव का निर्माण नहीं होता, विचार क्रान्ति को बहुत ही कम समय में नहीं लाया जा सकता। इसलिए हमें अपने उद्देश्य के अनुकूल उत्तरदायित्व की भावना, भविष्य के आदर्श-जीवन तक पहुँचने की महत्त्वाकांक्षा निर्मित करनी पड़ेगी, जो हमें आदर्श के अनुकूल आचरण व व्यवहार सिखा सके। विचारधारा के प्रति जब व्यक्तित्व का संपूर्ण समर्थन प्राप्त होगा, तभी गीता के ज्ञान का कार्यक्षेत्र निर्मित होना शुरू होता है। कृष्ण के प्रति अर्जुन की उत्कर्षपूर्ण श्रद्धा और आत्म समर्पण की भावनाओं ने ही संसार को इतना गोपनीय ज्ञान प्रदान किया है। महाभारत में इसी भाव ने प्राकृतिक सत्य का प्रतिपादन किया है और इसीलिए गीता किसी गुरु का शिष्य के प्रति आडम्बरमय उपदेश नहीं, किन्तु ज्ञान का वह दीपक है, जो कर्मवीर अर्जुन की-सी कायरता धारण करने पर राही को वीरता व संघर्ष के प्रकाश से आलोकित करता है, इसीलिए तो गीता स्वाभाविक अनुभूतियों से परिपूर्ण है तथा उसका सत्य हीरों व मोतियों से भी अधिक कीमती है।

''अर्जुन के आत्मसमर्पणमय सखाभाव ने ही गीता के गुह्यतम ज्ञान को थोड़े समय में समझ लिया। सखाभाव की आत्मसमर्पणमयी वृति अर्जुन के रोम-रोम से निकलती है। उसे कृष्ण की विद्वता में भी विश्वास है और अपने व उनके सम्बन्ध में भी विश्वास है, इसीलिए अर्जुन अपनी शंका का समाधान करने के लिये किसी धर्मशास्त्री के पास नहीं गया। उसकी यही मान्यता थी, कि कृष्ण के सिवाय मेरी शंकाओं का समाधान करने वाला कोई नहीं है-

**एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषत:।**
**त्वदन्य: संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपद्यते।।**

गीता- 6/39

'मेरे इस संशय को सम्पूर्णता से छेदन करने के लिए आप ही योग्य हैं, क्योंकि आपके सिवाय दूसरा मेरे इस संशय का छेदन करने वाला सम्भव नहीं है।''

अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण की भगवत्ता पर विश्वास था, इसलिए अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से कहा-

''आप तो 'युक्त योगी' हैं अर्थात् आप बिना अभ्यास, परिश्रम के सर्वत्र सब कुछ जानने वाले हैं। आपके समान जानकार कोई हो सकता ही नहीं। आप साक्षात् भगवान् हैं और संपूर्ण प्राणियों की गति-आगति को जानने वाले हैं। अत: मेरे विचलित मन की गति विषयक प्रश्न का उत्तर आप ही दे सकते हैं। आप ही मेरे इस संशय को दूर कर सकते हैं।''

भगवान श्रीकृष्ण की भगवत्ता पर विश्वास होने के कारण ही अर्जुन ने एक अक्षौहिणी सशस्त्र नारायणी सेना को छोड़कर नि:शस्त्र भगवान को ही स्वीकार किया था।

**(क्रमश:)**

गतांक से आगे

# मेरी साधना

**लेखक – पू. आयुवानसिंहजी, गुजराती भाष्य–श्री बलवंतसिंह पांची, हिन्दी अनुवाद–श्री धर्मेन्द्रसिंह आम्बली**

## अवतरण–89

**विजयाभिलाषी साधको सुनो! पराजय आगे चलती है और उसके पीछे पंक्तिबद्ध चलते हैं–भय, निर्बलता, साधनहीनता, स्वजनों का विश्वासघात, पराजित मनोवृत्ति और आत्मपतन। पराजय की संख्या के साथ उसके इन अनुयायियों की संख्या भी बढती जाती है। पर प्रयत्न और पुरुषार्थ वह अद्‌भुत रसायन है जो सैंकड़ों पराजयों को एकसाथ ही मंगलमयी विजयश्री में बदलने की सामर्थ्य रखता है। तब तुम अनुभव करोगे कि पराजय के ये संदेशवाहक दूत भी काया–कल्पित होकर निर्भयता, संबलता, साधन–प्रचुरता, स्वजन–सहायता, आशा, उत्साह और आत्मोत्थान के रूप में विजयश्री के अभिन्न मित्र बनकर तुम्हारा अभिवादन करने प्रस्तुत होंगे।**

भय, निर्बलता, विश्वासघात, पराजय का परिवार।<br>
प्रयत्न, पुरुषार्थ, निर्भयता, जय के साथीदार।।

इस अवतरण में 'प्रयत्न और पुरुषार्थ का रसायन' विजयाभिलाषी साधकों को सैंकड़ों पराजयों के परिणाम को एक ही मंगलमयी विजयश्री में बदल डालने की क्षमता रखता है, यह बात अच्छी तरह पूरे विश्वासपूर्वक समझाई गई है। इस अवतरण को अच्छी तरह से समझने के लिये भारत का इतिहास, यानी हमारा (क्षत्रियों का) इतिहास पढना चाहिए। लेकिन दुर्भाग्य से आज हमारे पास देखने, पढने, समझने की फुर्सत ही नहीं है। आप सभी जानते होंगे इस 'फुर्सत नहीं है' शब्द से हमारी पराजय की, पतन की शुरुआत हुई है। ख्याल है?

भारत सम्राट पृथ्वीराज संयोगिता के मोहपाश में बंधे महल से बाहर नहीं आ रहे थे। गौरी सेना सहित चढ आया। यह समाचार पहुँचाने वालों को सुनने की बजाए दासियों से कहलवा दिया गया–'फुर्सत नहीं है'। कुछ समझ सकते हैं।

आज हमारे समाज की भी वैसी ही स्थिति है, ऐसा विश्वास के साथ कहा जा सकता है। आज हम संपत्ति, समृद्धि बढाने के लिए विष्णु पत्नी (लक्ष्मी) के मोह में पागल बनकर जाति माता की दयनीय स्थिति, पग–पग पर इसके गौरव को लगते आघात और लुप्त होती उज्ज्वल परम्परा के बारे में कुछ सोचने समझने की बात की जाए तो हमारा उत्तर होता है–फुर्सत नहीं है।

'फुर्सत नहीं है' जैसे उत्तर के कारण हम सत्ता भ्रष्ट हुए और आज हम अपनी समस्त सामाजिक श्रेष्ठताओं से दूर होने की ओर बढते जा रहे हैं। इस बात पर गंभीरता से सोचने, देखने, कुछ करने की हमारी लेशमात्र भी चेष्टा नहीं है। चेष्टा ही नहीं, इच्छा भी नहीं है।

ऐसे तो मोहम्मद बिन कासिम के आक्रमण के समय से अट्ठारहवीं सदी तक विधर्मियों, विदेशियों के सामने गौरवपूर्वक लड़ते रहे, संघर्ष करते रहे, बलिदान देते रहे, जाति माता का गौरव बढाते रहे, उज्ज्वल और उत्तम परम्परा को स्वर्ण कलश चढाते रहे, पराजित होते हुए भी अद्‌भुत, अवर्णनीय, बेजोड़ इतिहास का सृजन करते रहे। हजार साल के इन संघर्षों से शायद थक गए होंगे या कुछ भी कारण रहा हो किन्तु अंग्रेजों के आगमन काल से हम संघर्ष विहीन रहे।

धीरे–धीरे संघर्ष–भीरु बन गये। सम्भव है सतत् पराजयों के परिणाम को जानते हुए इस अवतरण में बताया है–'पराजय आगे चलती है और उसके पीछे पंक्तिबद्ध चलते हैं–भय, निर्बलता, साधनहीनता, स्वजनों का विश्वासघात, पराजित मनोवृत्ति और आत्मपतन। पराजय की संख्या के साथ उसके इन अनुयायियों की संख्या भी बढती जाती है।' हम पराजय की इन सभी संतानों के भोग बनकर, थककर, हारकर, नि:सहाय बनकर संघर्ष विमुख बन बैठे हैं। टूट चुके हैं, चूर हो गये हैं। विजय प्राप्त

करने के लिये प्रयत्न और पुरुषार्थ करने का हमारे में साहस ही नहीं रहा, हिम्मत ही नहीं रही।

हमारे भूले हुए गौरव को प्राप्त करने के लिए, हमारी उज्ज्वल और उत्तम परम्परा को पुन: प्राप्त करने के लिये 'श्री क्षत्रिय युवक संघ' सामुहिक संस्कारमयी कर्म-प्रणाली के द्वारा भागीरथ प्रयास कर रहा है। उसका प्रत्यक्ष अनुभव 19 मई से 30 मई (2015) तक बेट द्वारिका में 300 बालिकाओं और 400 युवकों का शिविर था। जो हमारे लिए घातक 'फुर्सत नहीं है' शब्द को दूर करके शिविर दर्शन के लिए आते तो आत्मविश्वास जगने की पूरी सम्भावना थी। यह जगा हुआ आत्मविश्वास हमारा आत्मविश्वास और बढाता, संघ कार्य में रुचि पैदा करता, यह निर्विवाद सत्य है। हम 'फुर्सत नहीं है' के शाप से छुटकारा पाने और भय, स्वार्थ, लालच तथा अन्तर कलह से बचने के लिये परम कृपालु परमेश्वर को सभी सामुहिक प्रार्थना करें। वे करुणानिधि हमारी प्रार्थना सुनेंगे। हमारी सामुहिक प्रार्थना करने की तैयारी है? हमारा 'मैं' अवरोधक तो नहीं है?

परमात्मा शुभ प्रेरणा देकर हमारी बुद्धि को सन्मार्ग पर चलावें ऐसी अन्त:करण की विनम्र प्रार्थना है।

**अर्क-** आलस्य, प्रमाद और स्वार्थ पराजय के प्रतीक हैं।

## अवतरण-90

**तुम जिस वस्तु के लिए इच्छा और प्रयत्न करते हो वह अवश्य उपलब्ध होगी, क्योंकि निरंतर प्रयत्न वह सिद्धमंत्र है जो कभी निष्फल नहीं जाता, पर एक शर्त है,-**

**यदि सच्चा सुख चाहते हो तो पहले दारुण दुख झेलने के लिए तत्पर हो जाओ, स्थिर ऐश्वर्य चाहते हो तो भिखारी बनना स्वीकार कर लो, सुस्थायी राज्य चाहते हो तो दासता के कटु अपमान का अनुभव करना सीख जाओ और वास्तविक शान्ति चाहते हो तो क्रूर संघर्ष की तैयारी में जुट जाओ। मेरी साधना जीवन के प्रति इसी सच्चे और यथार्थ दृष्टिकोण को लेकर चलती है-इसलिए वह प्रयोग में कटु पर फल में सर्वाधिक लाभदायिनी है।**

मेरी साधना के कर्म कटु और कठोर।
फल उनका आयेगा मीठा और मधुर।।

गत अवतरण में साधक ने प्रयत्न और पुरुषार्थ का महत्त्व बताया। इस अवतरण में निरन्तर प्रयत्न को सिद्ध-मंत्र कहकर महत्त्व समझाने का प्रयास किया है। निरन्तर प्रयत्न के द्वारा तुम्हारी इच्छापूर्ति तो होगी ही किन्तु उसके लिए शर्त रखते हैं-यह शर्त मुश्किल और कठिन है पर असम्भव नहीं पर अशक्य जैसी हमको लगती है। इन शर्तों को सच्च अर्थ में समझना मेरे लिए तो उलझन जैसा है, यह स्वीकार करता हूँ।

'मेरी साधना' श्री क्षत्रिय युवक संघ की पाठ्य पुस्तिका है। शिविरों में एक घंटा उसी पर चर्चा चलती है जिसमें खूब गहराई से, सूक्ष्म रूप से अर्थ घटन करके समझाया जाता है। यह कार्य संघ के वरिष्ठ स्वयंसेवकों द्वारा किया जाता है। हम यहाँ जो इसका अर्थघटन व मूल्यांकन कर रहे हैं वह स्थूल दृष्टि से किया जा रहा है ताकि उसे समझकर समाज को कुछ प्रेरणा मिले। इसलिए सम्भव है कि इस अर्थघटन से किसी को 'मेरी साधना' का अवमूल्यन होता दिखाई दे। निष्कपट भाव से अपनी योग्यता न होने को स्वीकार करते हुए, सम्पादक महोदय के आग्रह पर साधारण भाषा में समाज के साधारण लोगों को कुछ समझ पड़े इसलिए लिखता हूँ। मेरी साधना के 111 अवतरण हैं। चार भाग इस अवतरण के साथ पूरे हो रहे हैं। पाँचवां भाग 21 अवतरण का बाकी है। वह भी जैसा समझ में आए, समाज को प्रेरणा मिले इसलिए लिखने का प्रयास रहेगा।

कुछ लोगों में इन लेखों के बारे में छिपा विरोध होगा। एक व्यक्ति ने पत्र द्वारा आक्रोश व्यक्त किया-'तुम क्या समझते हो? तुमको इस समाज की खमीरी और खुमारी की कुछ खबर नहीं है। तुम छोटे बच्चे हो।' उनकी भावना को अगर आघात लगा हो तो क्षमा याचना के साथ स्पष्टता कर देता हूँ। जिन शब्दों पर आक्रोश था, वे शब्द मेरे नहीं हैं। स्व. श्रद्धेय आयुवानसिंहजी के हैं। इसलिए मुझे दण्ड देने की आवश्यकता नहीं थी, फिर भी मैं क्षमा याचना करता हूँ।

अन्य किसी का भी किसी प्रकार का विरोध हो तो क्षमा याचना में कोई संकोच नहीं है। आशा है विशाल दिल से उदार मन से मुझे माफ करेंगे।

इस अवतरण में जो चार शर्तें रखी गई हैं उनमें से चौथी शर्त है-'वास्तविक शान्ति चाहते हो तो क्रूर संघर्ष की तैयारी में जुट जाओ।' इस बारे में भी पाठकों से आग्रह है कि कोई गहरी समझ दे सकें तो आभारी रहूंगा। शेष 21 अवतरणों में भी कितने ऐसे होंगे कि जिनको अच्छी तरह समझा न पाऊं, इसके लिये पहले से क्षमा चाहता हूँ। परमात्मा हम सभी को सन्मार्ग पर चलाते रहें, ऐसी प्रार्थना।

## अवतरण-91

**मैंने मृत्यु और पराभव के कारणों पर मनन किया, निष्कर्ष पर पहुँचा-मृत्यु को मृत्यु ही पराजित कर सकती है। तो जीवित रहने के लिए मरने का अभ्यास करना पड़ेगा। मरणाभ्यास के लिए क्षण-प्रतिक्षण संघर्ष का स्वागत करना पड़ेगा-नहीं, उसे आमन्त्रित करना पड़ेगा। संघर्ष को निमन्त्रित करने के लिए शरीर, आत्मा और मन की साधना उपेक्षित है। यही वह सत्य है जिसको अब तक मैं विस्तृत कर रहा था।**

मर कर अमर होने का उपाय।
शौर्य, साहस, सत्कर्म से जग में जी जाना।।

'मेरी साधना' पुस्तिका के छोटे-छोटे 111 अवतरणों में 'गागर में सागर' समा दिया गया हो, वैसा नहीं लग रहा है? जन्म-जीवन और मृत्यु की सभी घटनाएँ, कर्तव्य, धर्म, आध्यात्म और ईश्वर का बोध, शास्त्रों का सार और धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारों पुरुषार्थ समा दिए गये हों; यदि ध्यानपूर्वक पढेंगे, समझेंगे तो ऐसा लगे बिना नहीं रहे। ये सभी घटनाएँ समझाने के लिये अनेक पृष्ठ भरने या लम्बी माथा-पच्ची करने की आवश्यकता नहीं हमको तो उपयोगी प्रेरणा, साधक के चिंतन का सार ग्रहण करने की आवश्यकता है।

'मृत्यु को मृत्यु ही पराजित कर सकती है' ऐसी गूढ बात समझनी थोड़ी मुश्किल है, किन्तु समझने के लिए कोई आधार पकड़ लें तो खूब सरलता से समझ सकेंगे। हम महाराणा प्रताप का इतिहास, जीवन और कार्य समझ लें तो अवतरण सरलता से समझ में आ जाएगा। मृत्यु को पराजित करने का अर्थ है अमर हो जाना। महाराणा प्रताप की अमरता के सामने कोई प्रश्न नहीं उठ सकता। महाराणा ने मृत्यु के अभ्यास के लिए संघर्ष का स्वागत किया। संघर्ष को निमंत्रण दिया और शरीर तथा आत्मा की साधना भी खरी थी।

जीता है वह जो मर चुका हो अपनी कौम के लिए।
मरना तो है उसका जो जीता हो केवल अपने लिए।।

साधक इस बात को समझाने के लिए अवतरण के अन्त में कहता है-'यही वह सत्य है जिसको अब तक मैं विस्मृत कर रहा था।' आज का क्षत्रिय संघर्ष विमुख बनकर मृत्यु से डर रहा है इसीलिए तो वह संघर्ष का स्वागत करना या निमंत्रण देना भूलकर, मृत्यु को मृत्यु से पराजय देने का शौर्य कर्म करना छोड़कर स्वकेन्द्री बनकर आराम से जी रहा है। मरण से डरने के बाद भी मृत्यु तो आकर उठा ले जाती है। साधक द्वारा 'मैं विस्मृत कर रहा था' का अर्थ समझते हैं? भूली हुई बात को याद करके क्षात्रधर्म पालन के मार्ग की प्रणाली बनानी है।

मृत्यु को मृत्यु द्वारा पराजित करके इतिहास के पन्नों पर अपना नाम स्वर्णाक्षरों में लिखाकर अमर होने वाले अनेकों नाम हैं। मृत्यु को मृत्यु ही पराजित कर सकती है, इसे अच्छी तरह समझने के लिए थोड़े उदाहरण उपयोगी साबित होंगे। जो लोग स्वार्थ छोड़कर परार्थ या परमार्थ जीवन जी गए वे सभी मृत्यु को पराजित करके गये अर्थात् उनके नाम अमर हो गए। उनका लोग पूजनीय, आदरणीय, प्रातः स्मरणीय मानकर सम्मान करते हैं। हमारे ही समाज में बीसवीं सदी के मृत्यु को पराजित करने वाले महानुभाव स्व. हरभमजी साहब, स्व. मनुभा बापु चेर, स्व. हरिसिंहजी गुढला, भाडवा दरबार साहब चन्द्रसिंहजी, राष्ट्रीय स्तर पर स्व. तनसिंहजी, चन्द्रशेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल, राजगुरु, मदनलाल धींग्रा आदि मृत्यु पर विजय पाकर अमर हो गए।

श्री क्षत्रिय युवक संघ सामुहिक संस्कारमयी कर्म-प्रणाली द्वारा सुप्त संस्कार जागृत करके परार्थ व परमार्थ जीवन जीने का संस्कार सिंचन करता है। जिन्होंने ये संस्कार शत-प्रतिशत जीवन में उतर कर जीवन बनाया वैसे पू. स्व. तनसिंहजी, स्व. आयुवानसिंहजी, स्व. नारायणसिंहजी और कुछेक लोग इस संस्कार को जीवन में उतारकर जीते हैं। मर कर मृत्यु को पराजित करने की कला श्री क्षत्रिय युवक संघ ने पुन: स्थापित की है, ऐसा कहने में अतिशयोक्ति नहीं है। यह कला हमारे घर में पहुँच जाए और अपनायी जाए तो क्षात्रधर्म की जयघोष सर्वत्र गूंज उठेगी।

हमको सोचना यही है कि यह शिक्षा हमारी भावी पीढ़ी को दें ताकि क्षात्रधर्म का सितारा बुलन्द बनकर चमक उठे, वैसा करने को वे तैयार हों। परमात्मा सभी पर सद्बुद्धि का आशीर्वाद बरसा रहा है। हम उसे ग्रहण करने के सन्मार्ग पर चलें। प्रभु सद्मार्ग पर प्रेरित करें ऐसी अभिलाषा है।

**अर्क-** श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा ही मनुष्य मृत्यु को पराजित करके अमर हो जाते हैं।

## अवतरण-92

**प्रतिशोध मेरी आत्म-पीड़ा का महान लक्ष्य है जिसे कभी मैं दृष्टि से ओझल नहीं होने दूँ। शत्रुओं के जीवन-जल से अपने पूर्वजों को अंजलि दूं-उष्ण रक्त से आचमन करूं, तब जाकर जीवन की उस संजीवनी शक्ति का उदय और विकास होगा जो मानवीय अस्तित्व का गौरवमय आभूषण है। प्रतिशोध की भावना का उदय और उत्कर्ष या तो निर्बल-नपुंसकों में नहीं होता या उनमें, जो आत्म-विस्मृति के गड्ढे में गिरकर सर्वथा संज्ञाहीन हो चुके हैं।**

अनिष्ट तो संपूर्ण मानव जात के बैरी।
उनके अवरोध ने प्रतिशोध की भावना भरी।

इस अवतरण की चर्चा में गलत अर्थघटन की पूर्ण सम्भावना है। हमारी नजर में प्रतिशोध का सीधा अर्थ है बैर का बदला लेना, ऐसा मान लें तो हमारी गाड़ी गलत पटरी पर चढ जाए, इस पुस्तिका के उद्देश्य सर्वजन सुखाय, सर्वजन हिताय की भावना के साथ बराबर मेल नहीं बैठेगा। इस पुस्तिका यानी श्री क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृति का मुख्य और मूल सूत्र है- अमृत तत्व का रक्षण, वर्धन व पोषण और विष तत्व का नाश। इस सूत्र की दृष्टि की समझ रखकर अवतरण को समझें, चर्चा करें तो इस प्रवृति, इस पुस्तिका के भावों को ठेस न लगे, अन्याय न हो। इस अवतरण का विद्वजन अलग-अलग अर्थ घटन कर सकते हैं। हम तो यथाशक्ति सामाजिक दृष्टिकोण से यथाशक्ति समझने का, चर्चा करने का प्रयास करते हैं ताकि समाज को प्रेरणा मिले, मार्गदर्शन मिले।

साधक ने अवतरण के प्रथम वाक्य में ही कहा है- 'प्रतिशोध मेरी आत्मपीड़ा का महान लक्ष्य है।' इस वाक्य के भाव को समझना और चर्चा करना कठिन दिखता है, फिर भी अभी तक छिछले पानी में छप-छप किया है, वैसे ही इस अवतरण पर यथाशक्ति मति पंगु प्रयास कर जिम्मेदारी निभा रहा हूँ।

'अमृत तत्व का रक्षण, वर्धन व पोषण तथा विष तत्व का नाश' इसके आधार पर तो यही कहा जा सकता है-'सर्वेभवन्तु सुखिन: सर्वेसन्तु निरामय। सर्वे भद्राणी पश्यन्तु मा कश्चित दुख भागभवेत।' तो फिर वैर का बदला (प्रतिशोध) मेरी आत्म-पीड़ा का महान् लक्ष्य है, ऐसे शब्दों का किस संदर्भ में मूल्यांकन करें? कठिन मुसीबत भरा कार्य है। इससे भी अधिक मुसीबत भरा व पहेली जैसा है-'शत्रुओं के जीवन जल से अपने पूर्वजों को अंजलि दूँ, उष्ण रक्त से आचमन करूं, तब जाकर जीवन की उस संजीवनी शक्ति का उदय और विकास होगा।'

जीवन की संजीवनी शक्ति का उदय और विकास कब होगा, कैसे होगा यह लक्ष्य में रखकर अवतरण का मूल्यांकन करें तो बहुत कुछ समझ में आएगा ऐसी संभावना है। साधक के सभी वाक्य कथनों को समझने जैसी क्षमता, समझदारी और पुरुषार्थ के अभाव में समाज को उपयोगी हो सके तो ऐसा सोचकर चर्चा करेंगे वह ज्यादा व्यवहारी एवं उपयोगी साबित होगा।

प्रतिशोध, वैर, बदला लेने की भावना की बात व्यक्तिगत, स्वार्थगत बात नहीं है। किन्तु हमारे देश का, धर्म का, संस्कृति का, श्रेष्ठ और उत्तम परम्परा का, सदाचारी वृति का, सहयोगी भावना का, परोपकारी प्रणाली का नुकसान किया है, नष्ट किया है; ऐसे सभी प्रकार के अनिष्ट, दूषण, विचारधारा, मान्यताएँ हर एक भारतवासी के दुश्मन हैं। इन दुश्मनों के सामने प्रतिशोध की भावना प्रत्येक भारतवासी की अन्तर-व्यथा होनी चाहिए। ऐसा समझें तो वही देश, मानव जाति व प्राणीमात्र के लिए कल्याणकारी होगा।

देश, धर्म, संस्कृति, ऋषि परम्परा और उत्तम भावों, सद्गुणों को हानि पहुँचाते तत्वों, भावों, दूषणों, अनिष्टों के सामने लड़कर उन हानिकारक तत्वों का नाश करने का काम क्षत्रियों का है। इसी का नाम क्षात्रधर्म है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम क्षत्रिय होने का गौरव लेने के लिए तैयार हैं लेकिन इन अनिष्ट तत्वों, दूषणों के सामने लड़कर उन्हें समाप्त करने का सामर्थ्य, शक्ति और भाव गंवा बैठे हैं।

अंग्रेजों के शासनकाल में हम भोग-विलास, वैभव, क्षात्रत्व का हनन करने वाले तत्वों का शिकार बनकर हमारी असलियत, खुमारी, त्याग, बलिदान की भावना व परम्परा को भूलकर कायर, भीरु, स्वार्थी और कंगाल बन गये। हम आजादी की लड़ाई में सक्रिय नहीं बन सके। इस संघर्ष में हमारा योगदान नगण्य-सा रहा। यह सिद्ध करता कि हमने अपना नूर गंवा कर समाज को जीवित रखने वाले त्याग, बलिदान, समर्पण जैसे गुणों को त्याग दिया है। जिसके कारण दीन-हीन हालत में नगण्य बन कर जी रहे हैं।

राष्ट्र, धर्म, संस्कृति, ऋषि परम्परा की बात छोड़कर, थोड़ा नीचे उतरकर हम अपनी जातिगत समस्याएँ, बाधाएँ, मुसीबतों के बारे में सोचते हैं। क्या हमारे पतन के कारण कुसंप, व्यसन, स्वार्थ, रूढियों, कुरिवाजों, अंध श्रद्धा, अज्ञान जैसे अनिष्टों, दूषणों के सामने प्रतिशोध की आत्म पीड़ा अनुभव करते हैं? वर्तमान समय में दारू का दैत्य हर वर्ष हमारे कई युवकों का भोग लेता है। इस बारे में सोचकर इस दैत्य को खत्म करके युवकों को रक्षण देने का कभी हम सोचते हैं? हम तो जो अनिष्ट हमारे शत्रु हैं उन्हीं की मित्रता करने को उत्सुक हैं।

घातक, मारक, दूषणों, अनिष्टों से अपनी जाति को न बचा सकें, इतने संकल्पहीन, निर्बल बन बैठे हैं। फिर राष्ट्र को, धर्म को, संस्कृति को, ऋषि परम्परा को किस तरह से बचा सकेंगे? श्री क्षत्रिय युवक संघ की विचारधारा समाज को जीवित रखने के लिए वरदान रूप में दी है। हम उसे देखें, जाने, समझें और अपनाएँ। यदि हम समाज की स्थिति पर आत्मपीड़ा से पीड़ित हैं तो संघ के रूप में उपचार हाथ में ही है।

मरणोन्मुख समाज दर्शन के बाद पू. तनसिंहजी द्वारा सहगानों की पंक्तियों द्वारा व्यक्त की हुई व्यथा और उपाय देखनेको मिलते हैं-

अरमान जलाता हूँ पर दीप नहीं जलता,
सौगंध दिलाता हूँ पर मंत्र नहीं चलता।

अब उठ मेरे मनवा तुझे उठना ही पड़ेगा,
सीता फुला तूफान से भिड़ना ही पड़ेगा।
जिनके थे भरोसे वे क्या पहुँच सकेंगे?
जो न पहुँच सके, वे क्या इतिहास लिखेंगे।
अब तो अकेले अम्बर को झुकाना ही पड़ेगा

श्री क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृति द्वारा पू. तनसिंहजी ने अकेले अम्बर झुकाया, ऐसा कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी।

संकटों, अनिष्टों, दूषणों से घिरे हुए हमारे में जो उनके प्रति प्रतिशोध की भावना, लगन न हो तो अवतरण की अन्तिम दो पंक्तियाँ ध्यानपूर्वक पढ लेने की प्रार्थना। हमारे पतन के कारण रूप अनिष्टों, दूषणों के सामने हमारे में प्रतिशोध की भावना जगे ऐसी सामुहिक प्रार्थना परमेश्वर से करें।

**अर्क-** कायरता कृपणता की चिर संगिनी है। वीरता उदारता की।

दुख से कातर व्यक्ति विवेकहीन हो जाता है। - **चाणक्य**

# चरित्र-निर्माण में संस्कारों का अवदान

– श्री रामगोपाल

भारतीय संस्कृति में चरित्र और संस्कार-दोनों ही व्यापक रूप में प्रचलित शब्द हैं। प्राचीनकाल में जब बालक विद्यार्थी के रूप में गुरुकुल में रहकर शिक्षा प्राप्त करता था, तब वहाँ उसे विद्याध्ययन के साथ ही संयम, नियम, त्याग, तपस्या, धर्म-कर्म, आचार-विचार, सत्य-परोपकार, ब्रह्मचर्यव्रत-पालन की शिक्षा सिद्धान्त व व्यवहार के रूप में दी जाती थी। शिक्षा मानव का आन्तरिक संस्कार है, जिसके कारण बालकों में धार्मिक, नैतिक, अनुशासित एवं मर्यादापूर्ण जीवन जीने के संस्कारों का रोपण स्वमेव होता रहता था, किन्तु कालान्तर में ऐसा दुर्योग आया कि भारत पर विदेशी आक्रान्ताओं का आधिपत्य होते ही हमारी शिक्षा के सुसंस्कारों को सुनियोजित तरीके से नष्ट-भ्रष्ट करने का षड़यंत्र किया गया। हम पहले तो राजनैतिक सत्ता के अभाव में गुलाम बने, किन्तु बाद में शनैः शनैः हमें मानसिक गुलामी की जंजीरों में जकड़ लिया गया। विडम्बना है कि आज हम अपनी संस्कृति, संस्कार, सदाचार, धार्मिक आचार-विचार-सभी को हेय दृष्टि से देखने लगे हैं। यहाँ तक कहा जाने लगा है कि रूढिगत धर्म और धार्मिक मान्यताओं के कारण ही इस देश का पतन हुआ है। गुलामी की शिक्षा और उससे पनपे कुसंस्कारों के साथ पाश्चात्य संस्कृति के प्रदूषण से नयी पौध को भ्रमित किया जा रहा है। भारत का इतिहास बहुत पुराना नहीं है तथा धार्मिक मान्यताओं का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है- ऐसी अनर्गल बातों का प्रचार-प्रसार इसलिए हो रहा है कि हम अपनी महिमामयी संस्कृति को और अपने गौरव को भुला सकें।

प्रायः देखा गया है कि सुसंस्कारों अथवा कुसंस्कारों के निर्माण में वातावरण सबसे अधिक सहायक होता है। मनुष्य जैसे संसर्ग में रहेगा, प्रायः उसी के अनुरूप उसके संस्कारों का, चरित्र का निर्माण होगा। वातावरण या संगति से व्यक्ति के संस्कार प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। इस सम्बन्ध में एक छोटी-सी कहानी है कि एक हाट या बाजार में एक बहेलिया दो तोते बेचने आया। संयोग से उस राज्य के राजा भी उधर से निकल रहे थे। राजा ने बहेलिया से तोते का मूल्य पूछा। बहेलिया ने कहा- 'महाराज! तोते से पूछ लीजिए।' राजा ने एक तोते से कुछ प्रश्न किये। तोते ने राजा के प्रश्नों का सटीक उत्तर दिया तो राजा ने अच्छा मूल्य देकर वह तोता खरीद लिया। फिर दूसरे का मूल्य पूछा। बहेलिये ने कहा-'राजन! उससे भी पूछ लीजिए।' क्योंकि राजा पहले तोते की बातों से संतुष्ट थे, इसलिये बिना चर्चा किए दूसरे तोते को भी उसी मूल्य पर खरीद लिया। महल में दोनों के पिंजरों को टांग दिया गया। कुछ दिनों तक राजा विद्वान तोते से सत्संग करते रहे। फिर एक दिन दूसरे तोते से कुछ प्रश्न किये तो उसने राजा को अपशब्दों में उत्तर दिया। राजा क्रुद्ध होकर पिंजरे में से उस दुष्ट तोते को पकड़कर कटार से मारना ही चाहते थे कि विद्वान तोते ने कहा,-

**गवाशनानां स श्रृणोति वाक्य-**
**महं हि राजन् वचनं मुनीनाम्।**
**न चास्य दोषो न च मद्गुणों वा**
**संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति।।**

'महाराज! हम दोनों भाई हैं। हम दोनों भाइयों के पिंजरे एक ही बाड़े में अलग-अलग टंगे रहते थे। मेरे पिंजरे के पास साधु लोगों का प्रतिदिन सत्संग होता था। अतः मुझे सत्संग सुनने को मिला, किन्तु दूसरे छोर पर टंगे पिंजरे के पास कसाइयों का बाड़ा था, उसमें मेरे भाई को प्रतिदिन गालियाँ सीखने को मिली। इस तरह मुझ में कोई विशेष गुण नहीं है, और न मेरे भाई में कोई दुर्गुण है, संसर्ग के कारण हम दोनों के स्वभाव में भिन्नता है।' राजा ने यह सुनकर दुष्ट प्रकृति के तोते को पिंजरे से उड़ा दिया।

यह कहानी छोटी-सी है किन्तु इससे संस्कारों के निर्माण की तथा उनकी प्रबलता की बात स्पष्ट होती है। किस मनुष्य में कितने कुसंस्कार हैं, इसकी पहचान उसके

कदाचारी मित्रों को देखकर ही की जा सकती है। यदि संग-दोष के कारण बालक झूठ बोलना सीख गया है तो उसे झूठ बोलने से रोकने के लिये अधिक प्रयास करना पड़ेगा। मनुष्य में किसके दोष से किस अवगुण का आरम्भ होता है, इस सम्बन्ध में संस्कृत की सुप्रसिद्ध उक्ति है-

**दु:शीलं मातृदोषेण पितृदोषेण मूर्खता।**
**स्वैरत्वं सङ्गदोषेण दारदोषैर्दरिद्रता।।**

अर्थात् मनुष्य में माँ के दोष से दु:शीलता, पिता के दोष से मूर्खता, कुसंग से उच्छृंङ्खलता तथा स्त्री के दोष से दरिद्रता आती है।

इस प्रकार मनुष्य के चरित्र-निर्माण में आधारभूमि के रूप में जो मुख्य तत्त्व माने जाते हैं, उनमें संस्कार एक प्रमुख तत्त्व है।

मनुष्य के ह्रदय में जो भाव उठते हैं, वे इन छ: बातों से परिलक्षित होते हैं-वचन, बुद्धि, स्वभाव, चरित्र, आचार तथा व्यवहार। चरित्र शब्द सामान्य रूप से व्यवहार, आदत, चाल-चलन एवं स्वभाव आदि का वाचक है। चरित्र-निर्माण के लिए अनुशासन की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। प्राचीनकाल में अनुशासन को संयम या मर्यादा भी कहा जाता था। भगवान श्रीराम, श्रीकृष्ण, गौतम बुद्ध, महावीर, गुरु नानक- सभी का जीवन चरित्र आत्मसंयम की भित्ति पर आधारित रहा है। चरित्र-निर्माण के लिए वर्षों साधना करनी पड़ती है और उसे नष्ट करने के लिये क्षण मात्र का समय ही पर्याप्त है। यदि चरित्र बिगड़ जाए तो फिर समझना चाहिए कि हजारों-हजार जन्म बिगड़ गये। इसलिए चरित्र निर्माण पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

**ऊँचे गिरि से जो गिरै, मरै एक ही बार।**
**जो चरित्र गिरि से गिरै, बिगरै जन्म हजार।।**

चरित्र और आदर्श की शिक्षा हमारे देश में सबसे पहले परिवार से प्रारम्भ होती है। परिवार में माता-पिता, भाई-बहन तथा अन्य सम्बन्धी बालक को संस्कृति के विभिन्न उपकरण जैसे रीति-रिवाजों, परम्पराओं, मूल्यों, विश्वासों, धर्म और नैतिकता आदि की व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करते हैं। परिवार में बालक विभिन्न संस्कारों को सीखकर सुसंस्कृत बनता है। हिन्दु समाज में बालक को सुसंस्कृत बनाने के लिये उसके अनेक प्रकार के संस्कार किए जाते हैं। बालकों को वेदाध्ययन में प्रवृत करने के लिए उपनयन-संस्कार की व्यवस्था की गई है। प्रत्येक देश की संस्कृति में योगदान करने वाले महापुरुषों पर उनके बाल्यकाल में परिवार का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। शिवाजी पर बाल्यकाल में माता जीजाबाई द्वारा प्रतिरोपित संस्कारों के कारण उनमें धार्मिक एवं राष्ट्रीय गुणों का विकास हुआ। जन्मजात संस्कारों के कारण ध्रुव, प्रहलाद, अभिमन्यु आदि ने जिस उदात्त आचरण का परिचय दिया, उसे त्याग-तपस्या की पराकाष्ठा कहा जा सकता है।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य के चरित्र की नींव उसके जीवन के कुछ वर्षों में ही पड़ जाती है। शैशवावस्था में बालक के मन पर आचार-विचार के विषय में जो संस्कार पड़ जाते हैं, वे ही आगे चलकर चरित्र के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। चरित्र के निर्माण में शिक्षा सर्वाधिक सहायक होती है। यह शिक्षा अधिकतर अनौपचारिक होती है। बालक का चरित्र निर्माण उपदेशों से इतना अधिक प्रभावित नहीं होता, जितना कि परिवार, पास-पड़ोस, समूह आदि में उसके सामने उपस्थित होने वाले उदाहरणों के द्वारा होता है।

तत्त्वज्ञों का कथन है कि निरन्तर धारण किया गया विचार ही कृत्य बन जाता है और सूक्ष्म शरीर पर अंकित होता रहता है। सूक्ष्म शरीर पर अंकित होने वाले कृत्य ही संस्कार बनते हैं। जो अवचेतन मन के माध्यम से मनुष्य के मन और मनोवृत्ति को प्रभावित एवं नियंत्रित करने के साथ ही उसे निर्देशित भी करते हैं। आगे चलकर संस्कारों की यही दृढता-चरित्र में परिवर्तित हो जाती है। मनुष्य का स्वभाव तो सहजात होता है, किन्तु चरित्र अर्जित किया जाता है। चरित्र का निर्माण व्यक्ति अपनी सहज वृत्तियों को बुद्धि द्वारा नियंत्रित और संस्कारित करके करता है। स्वभाव के उपादान से चरित्र निर्माण को नैतिकता कहते हैं। मनुष्य के चरित्र का प्रदर्शन व्यवहार रूप में होता है। व्यवहार चरित्र का बाह्य रूप है, दोनों एक दूसरे को

**(शेष पृष्ठ 24 पर)**

# सुदामा का स्वागत

– सुदर्शनसिंह चक्र

पत्नी के आग्रह-अनुरोध तथा अपने भुवनमोहन सलोने बालसखा की अनोखी छवि से नेत्रों को तृप्त करने की लालसा से सुदामा किसी प्रकार दो मुट्ठी चिउड़ा की पोटली लेकर द्वारिका पहुँचे। उनके सखा सर्वेश होकर भी दीन-बन्धु ठहरे। अतएव वे उनका आतुर आलिंगन पाकर उनके अन्त:पुर में पहुँच गये। सखा के निजी पर्यंक पर उन्हें आसन मिला।

द्वारिका का वैभव, जिनमें लोकपालों की सब विभूतियाँ आकर एकत्र हो गयी थीं, संसार की तो चर्चा ही व्यर्थ है। द्वारिका ने स्वर्ग को सुधर्मा सभा और कल्प-वृक्ष से सूना कर दिया था। उस वैभवमयी नगरी में द्वारिकेश का भवन और उसमें भी उनकी प्रधान प्रिया श्रीरुक्मिणीजी का अन्त:पुर और वहाँ भी श्री श्यामसुन्दर का पर्यंक। विश्व की सारी विभूति, सम्पूर्ण सुषमा एवं समस्त लालित्य मानो साकार घनीभूत हो गया था।

मैल जमे, बिवाइयों से शतश: विदीर्ण चरण मानो ग्रीष्म का शुष्क सरोवर दरारों से मुख फाड़े खा जाना चाहता हो। घुटने से भी ऊपर ही मैली धोती, जो स्थान-स्थान पर पैबन्द लगी और गांठों से भरी थी। इतने पर भी बेचारी शरीर को पूरा ढक नहीं सकती थी। उसमें से जानुओं का सूखा चमड़ा उतावली से बाहर आने को झाँक रहा था-स्थान-स्थान से। उस धोती का बड़ा भाई उत्तरीय तो अपने अस्तित्व पर रो रहा था। सिर पर वह भी नहीं। हड्डी के ढाँचे पर चर्म मढ़ दिया गया था। नसें ऐसी उभड़ गयी थीं मानो किसी ने ऊपर से चिपका दी हो। रक्त-माँस का नाम नहीं। दुर्बलता दरिद्रता एवं करुणा की साकार प्रतिमा।

उन नटखट ने किया क्या? दरिद्रता एवं कुरूप करुणा की इस प्रतिमा को उस विभूति तथा सौंदर्य-माधुर्य के घनीभाव पर उठाकर अपने हाथों से स्थापित कर दिया। इसीलिए तो वे दीनबन्धु अनाथनाथ के साथ श्रीपति सर्वेश हैं। यह क्या कम उपहास हुआ। नटखट ही क्या जो यहीं शान्त रहे? सुदामा को पता ही नहीं था कि अभी सोलह हजार एक सौ आठ का चक्कर बाकी है।

पता नहीं होली थी कि नहीं लेकिन बहुत दिन बाद दो बाल-मित्र मिले थे। यही उनके लिये पर्याप्त था। आमोद, कौतुक आज न होगा तो कब होगा? श्यामसुन्दर ठहरे सदा के शरारती, उन्होंने रुक्मिणीजी को कुछ संकेत किया और नाटक प्रारम्भ हो गया।

सुदामा पलँग पर बैठे थे। उन्होंने स्नान-भोजन कर लिया था। मार्ग का श्रम दूर हो चुका था। अब रुक्मिणीजी ने आकर उनके श्रीचरणों पर मस्तक रक्खा। सुदामा इतनी देर में उनसे परिचित हो चुके थे। हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया 'सौभाग्यवती, पुत्रवती, पतिप्रिया भव!' रुक्मिणीजी एक ओर हट गयीं। सत्यभामाजी आयीं। उन्होंने भी वैसे ही प्रणाम किया। सुदामा ने परिचय के लिए सखा के मुख की ओर दृष्टि की।

'ये आपके सखा की-' श्यामसुन्दर मुस्कराये।

'सौभाग्यवती, पुत्रवती, पतिप्रिया भव!' ब्राह्मण ने आशीर्वाद दिया और वे भी हट गयीं। अब जाम्बवतीजी ने चरणों पर मस्तक रक्खा। विप्र ने दृष्टि उठाकर सखा से फिर परिचय चाहा।

'ये भी!' सखा ने मन्द मुस्कान में परिचय संक्षिप्त कर लिया। फिर वही आशीर्वाद मिला और उनके हटने पर सत्याजी आकर प्रणत हुई। इस बार सखा की ओर दृष्टि उठाने पर केवल संकेत से संक्षिप्त उत्तर मिला 'हूँ!' बेचारे ब्राह्मण ने आशीर्वाद दे दिया।

दो, चार, छ:-यह तो प्रणाम करने वालों का ताँता ही नहीं टूटता। 'कितनी रानियाँ हैं इनके?' ब्राह्मण ने मन-ही-मन कहा। परिचय-जिज्ञासा के उत्तर में वही 'हूँ!' मिलते देख उन्होंने परिचय जानने के लिए सबकी ओर देखना छोड़ दिया और धड़ाधड़ आशीर्वाद देने लगे।

दर्जन पूरी होते-होते ब्राह्मण को लगा कि उसका आशीर्वाद बहुत लम्बा है और रानियों का ताँता टूटता ही नहीं था। इसलिए उन्होंने अपने आशीर्वाद का संक्षिप्त संस्करण किया 'पुत्रवती, पतिप्रिया भव!'

लगभग एक दर्जन प्रणाम और हुए। ब्राह्मण-देवता घबराये। उन्होंने फिर आशीर्वाद को संक्षिप्त किया 'पति-प्रिया भव!' लेकिन यहाँ तो रोनियों का ताँता लगा था। जब आशीर्वाद देते-देते थक गये तो केवल 'भव!' कहकर काम चलाने लगे और जब जिह्वा ने सत्याग्रह कर दिया तो हाथ हिलाकर ही संतोष करना पड़ा। बेचारा वह दुर्बल हाथ भी कब तक साथ देता? थक गया। सिर हिलाकर, नेत्रों के संकेत से आशीर्वाद देना प्रारम्भ हुआ। यहाँ भी पार पड़ता दीख नहीं पड़ा। शरीर बैठे रहने में भी असमर्थ होने लगा। ब्राह्मण झुंझला गये।

'भाई! तुम्हारी रानियों की संख्या का आदि-अन्त भी है या तुम्हारी ही भाँति वे भी अनन्त हैं?' उन्होंने कातर वाणी से पूछा।

'नहीं-नहीं!' सखा मुस्कुराये-'अभी दो हजार सात सौ तेरह ने प्रणाम किया है। रानियों की संख्या सिर्फ सोलह हजार एक सौ आठ है।'

'बाप रे!' सुदामा बहुत घबराये। 'अब इस आशीर्वाद से पिण्ड कैसे छूटे?' उन्होंने कहा-'संख्या तो चाहे जितनी बढ़े, कोई आपत्ति नहीं। वह खूब बढ़े; पर यह सबको आशीर्वाद..।' उन्होंने अपनी उलझन प्रकट की।

सखा जोर से हँस पड़े। रानियाँ भी मुस्कुरा पड़ीं। ब्रह्मण्यदेव को ब्राह्मण पर दया आयी। उन्होंने झट बीच में उठकर विप्र के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया। सुदामा डरे 'इन्होंने एक संख्या और बढ़ा दी!' लेकिन किसी ने हृदय में कहा 'पति अपनी सभी पत्नियों का प्रतिनिधि होता है।' झट प्रसन्नता से खिल उठे। आशीर्वाद दिया 'तुम्हारी सभी पत्नियाँ सौभाग्यवती, पुत्रवती और तुम्हें प्रिय हो।' इस प्रकार उन्हें आशीर्वाद से छुट्टी मिली। सभी रानियों ने एक ही साथ अंजलि बाँधकर सिर झुका दिये।

*    *    *

'कल तो समय मिला नहीं, आज सब आपकी सेवा करने का सौभाग्य चाहती हैं।' नटखट सखा ने भूमिका बनायी।

सुदामा को स्नान करना था। वे विशाल सौध के प्रांगण में अपने बालसखा का हाथ पकड़े पधारे। मध्य में स्वर्ण की चौकी बिछी थी। उन्होंने उस पर चरण रक्खा ही था कि सारा प्रांगण तथा उसके चारों ओर के बरामदे सोलह हजार एक सौ आठ चल स्वर्ण लतिकाओं के द्वारा झूम उठे। सौंदर्य एवं सुरभि फटी पड़ती थी। किसी के हाथ में उबटन, किसी के चंदन, किसी के तेल और किसी के करों में सुवासित जल से पूर्ण स्वर्णकलश। विप्र के दर्शन रिक्तहस्त करने की धृष्टता किसी ने नहीं की थी।

ब्राह्मण ने एक बार दृष्टि उठायी। 'उफ्!' इतनी भीड़, एक-एक बूँद भी जल डाले तो मेरा क्या होगा?' वे बहुत डरे। उनके सखा हँस रहे थे। बड़ी ही नम्रता से उन्होंने कहा 'समस्त विश्व की श्रद्धा का विपुल उपहार ग्रहण करने की क्षमता तुम सर्वशक्तिमान में ही है। यह तीन हड्डियों का कंकाल पूजा के इस विराट् सम्भार को सह लेने में समर्थ नहीं है।'

सखा क्यों उत्तर देने लगे? वे एक ओर खिसक गये। उस सुषमा की भीड़ ने कलकण्ठ से स्तुतिगान प्रारम्भ किया और साथ ही विप्राभिषेक भी। जैसे ही कुछ मृदु करों ने ब्राह्मण के शरीर पर उबटन का स्पर्श कराया-वे नेत्र बन्द करके बैठ गये और लगे अपने नटखट सखा का ध्यान करने। उन्हें आशा नहीं थी कि वे इस चन्दन, तेल और जल के प्रवाह में से निकलकर फिर खड़े होने योग्य रहेंगे।

उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ। उन्होंने नेत्र बन्द किये-ही-किये अनुभव किया कि सुगन्धित उबटन के कीच में शरीर आकण्ठ ढक दिया गया है। हाथ हिल नहीं सकते। वे डरे 'कहीं और उबटन चढा तो नाक-आँख भी....। उन्हें उबटन समाधि लेनी होगी।' पर ऐसा हुआ नहीं। उनके मस्तक पर तेल की सुगन्धित धारा पड़ने लगी। शिवजी के ऊपर तो सब धाराबद्ध जल चढ़ाते हैं और यहाँ बहुमूल्य तेल-इत्र। विप्र ने तनिक नेत्र खोले। आँगन में

इत्र मोरियों में उमड़ चला था। 'कहीं नेत्रों में न जाए।' उन्होंने नेत्र जोर से बन्द कर लिए। वैसे ही बोले 'ऐसी अखण्ड धारा चढ़ानी है तो शंकरजी को पकड़ लाओ।' पर उस स्तोत्र-गान में उनकी सुने कौन?

तेल-इत्र बन्द हो गया और केशरिया चन्दन चढ़ने लगा। उबटन ने तो कण्ठ तक ही जकड़ा था, चन्दन दो-चार सेर मस्तक पर भी चढ़ ही गया। कुशल इतनी रही कि नाक और मुख ढकने के पूर्व ही मस्तक पर जलधारा पड़ी। मन्दोष्ण सुवासित जल की कुछ पतली और कभी-कभी मोटी धारें मस्तक से चरणों तक पड़ रही थीं। शरीर थोड़ी ही देर में थरथरा उठा। रोमांच हो आया और तभी जलधारा और स्तुति-गान समाप्त हो गया। सहसा शान्ति हो गयी।

'ध्यान ही करते रहेंगे या वस्त्र भी बदलेंगे? अपने करों में सुकोमल वस्त्र को लेकर उनका शरीर पोंछते हुए उनके सखा हँसते-हँसते कह रहे थे। अभी और कोई वस्तु न चढ़ने लगे, इसी भय से विप्र ने नेत्र खोले नहीं थे।

यह क्या? बाजीगर के खेल के समान हो गया। पूरा प्रांगण सुनसान पड़ा था। सखा के अतिरिक्त वहाँ कोई था नहीं। विप्र को भी इस परिहास पर हँसी आ गयी। उन्होंने वस्त्र बदले और पहले से प्रस्तुत दूसरे आसन पर एक कुसुम-कुञ्ज में सन्ध्या-पूजा के लिए बैठ गये।

* * *

ऊपर कौशेय वस्त्र का मण्डप तना था। नीचे दुग्धोज्ज्वल चाँदनी बिछी थी। मध्य में एक मृदुल आस्तरण-आस्तृत रत्नजड़ित स्वर्ण चौकी रक्खी थी। रजत-पीठों पर स्वर्ण थालियों में विविध व्यञ्जन एवं जल पात्र रक्खे थे। समस्त मण्डप में थालियों की पंक्ति लगी थी। दो पंक्तियों के मध्य में जाने को स्थान था। प्रत्येक पंक्ति मध्य के रत्नपीठ से प्रारम्भ होती थी। हाथ में चँवर लिए श्यामसुन्दर स्वयं चँवर कर रहे थे। इस प्रकार सुदामा भोजन-स्थान के उस दिव्य मण्डप के द्वार पर पहुँचे।

'प्रत्येक रानी ने अपनी योग्यता के अनुसार अपना थाल सजाया है। उन्होंने इस व्यञ्जनों के बनाने में किसी सेवक से कोई सहायता नहीं ली है।' सखा ने परिचय दिया।

ब्राह्मण के चरण द्वार पर ही रुक गये। 'द्वारिकेश की प्रियाओं ने स्वयं अपने कोमल करों से अग्नि के सम्मुख बैठकर इस कङ्काल के लिए यह कष्ट किया है।' विप्र बड़े धर्मसंकट में पड़े। 'जगदाधार जगन्नाथ की कुसुम सुकुमार रानियाँ, जो स्वयं पुष्प-चयन करने में भी कष्ट पाती होंगी, महेन्द्र भी जिनकी कठोर भृकुटि से काँपते हैं, सचराचर जिनकी चरण-रेणु मस्तक पर रखकर पवित्र होता है, उन्होंने अग्नि की उष्णता और धूम्र की नेत्रों को पीड़ा देने वाली कटुता की चिन्ता न करके यह प्रसाद प्रस्तुत किया है। ब्राह्मण के लिए इतनी श्रद्धा! इतनी कष्ट-सहिष्णुता, इतना आदर?' वे गद्गद् हो गये।

रानियों की श्रद्धा और कष्ट को देखते वह प्रसाद जितना महान था, थालियों की संख्या की दृष्टि से उतना ही विपुल भी। ब्राह्मण का हृदय बैठा जाता था। वे किसे छोड़ दें? इतने थालों में से एक-एक ग्रास तो क्या एक-एक दाना उठाने की भी शक्ति यदि उनमें होती-कितने प्रसन्न होते वे?

द्वार पर ही घुटनों के बल बैठकर उन्होंने भूमि पर मस्तक रख दिया।

'आप यह क्या कर रहे हैं?' हँसते हुए सखा ने पूछा।

'मोहन!' विप्र के नेत्र भरे थे। 'इस दुर्बल शरीर में इतनी भी शक्ति नहीं कि इन थालियों के चारों ओर घूम आवे। इनमें जो रानियों की श्रद्धा और कष्ट का प्रतीक है, उसे प्रणाम कर रहा हूँ।'

'आप आसन पर भी पधारेंगे या नहीं?' सखा ने हँस कर कहा। 'क्या करूंगा वहाँ जाकर?' ब्राह्मण इस परिहास से विचलित हो रहा था। 'आपने कोई भोजन का डौल तो किया नहीं है। इतनी लम्बी थालियों की पंक्ति में मैं दोडूं, या भोजन करूँ? मैं न कुम्भकर्ण हूँ, न आगस्त्य। न काल हूँ, न समुद्र। आपकी बुआ के लड़के भीमसेन होते तो भी बात दूसरी थी। मेरा दुर्बल शरीर तो इतना हिल भी नहीं सकेगा कि इनमें से एक-एक दाना उठा सकूँ।'

'आप व्याख्यान देंगे या आसन पर चलेंगे?' श्याम ने तनिक ठेला। चुपचाप जाकर सुदामा आसन पर बैठ गये।

'इन प्रसाद के पात्रों को कृतार्थ करें।' दोनों हाथ जोड़कर, बनावटी गाम्भीर्य दिखाते हुए सखा ने कहा।

'बस कृपा करो!' ब्राह्मण ने दोनों हाथ जोड़े और नेत्र बन्द कर लिए। अब नटखट को दया आ गयी। पलक मारते विप्र के सामने एक थाल आ गया। सबसे बड़ा, सबसे सुन्दर, सबसे बहुमूल्य। उसी में सब थालों में से एक-एक, दो-दो कण योगमाया ने संग्रह कर दिये। रानियों को संतोष हो गया। वे झटपट अपने-अपने थाल 'प्रसाद' समझकर उठा ले गयीं। ब्राह्मण ने नेत्र खोले और छककर भोजन किया।

आचमन करने पर एक ताम्बूलों का पर्वत उन्हें दिखाया गया। झट उन्होंने नेत्र बन्द करके एक ताम्बूल उठाया और मुख में ले लिया। अब की बार उन्होंने सखा को छका दिया था। दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े।

* * *

उत्तमासन पर दोनों बालमित्रों का हास-परिहास चल ही रहा था कि हाथ जोड़कर श्री रुक्मिणीजी सम्मुख उपस्थित हुई। 'मेरा परम सौभाग्य है कि आप मेरे भवन को अपनी चरण रेणु से पवित्र करते हैं!' उन्होंने स्तुति की।

'पर पता नहीं हमारे किस जन्म के पाप उदय हुए हैं कि हमारे सदन आपके श्रीचरणों से वंचित ही हैं। सत्यभामाजी ने पास ही खड़े होकर प्रार्थना की।

'मेरी बहिनें मेरे सौभाग्य पर ईर्ष्या करती हैं।' रुक्मिणीजी मुस्कुरायी।

'ठीक भी तो है' श्यामसुन्दर हँसते-हँसते बोले- 'आपको कम-से-कम एक-एक दिन की सेवा का सौभाग्य तो सभी को देना चाहिये।' उन्होंने प्रवचन किया।

'एक-एक दिन सबका?' सुदामा ने चौंककर पूछा।

'इसमें आपको सुविधा होगी। न कलशों जल चढ़ेगा और न थालियों की प्रदक्षिणा करनी होगी। एक-एक दिन में सबको सभी प्रकार की सेवा भी प्राप्त हो जाएगी; और आपको कष्ट भी नहीं होगा।' नटनागर हँस रहे थे।

'सोलह हजार एक सौ आठ दिन। चौवालीस वर्ष से भी अधिक!' ब्राह्मण ने चौंककर डरते हुए कहा। 'श्यामसुन्दर! इतने दिनों में बेचारी ब्राह्मणी प्रतीक्षा करते-करते मर जाएगी और सम्भवत: इस केवल एक-एक दिन के सत्कार को बीच में ही छोड़कर यह दुर्बल ब्राह्मण भी...!'

'तब जाने दें!' द्वारिकेश ने मुख गम्भीर कर लिया।

'हमारे भवन चरण-रज से भी वंचित ही रहेंगे?' सत्यभामाजी ने कुछ करुण-स्वर में पूछा।

'हाँ-एक बार आप सब भवनों में हो आवें!' सखा ने चट से कह दिया।

'सब भवनों में हो आवें! जैसे बच्चे का खेल है! भवन भी तो थोड़े ही हैं न?' विप्र ने झुंझलाहट से कहा।

'नहीं, नहीं, आपको पैदल नहीं दौड़ना होगा!' सखा ने आश्वासन दिया, 'कोई है? दारुक से कहो मेरा रथ प्रस्तुत करे।' व्यवस्था होने लगी।

'और मैं सोलह हजार एक सौ आठ बार रथ से चढ़ा-उतरी का व्यायाम करूँ?' ब्राह्मण की झुंझलाहट दूर नहीं हुई थी।

अन्त में, गरुड़ का आह्वान हुआ और सुदामा पक्षिराज की पीठ पर आगे श्यामसुन्दर को बैठाकर पीछे बैठे उन्हें जोर से पकड़कर। वह भी इस शर्त पर कि वे किसी के आँगन में पक्षिराज की पीठ से नहीं उतरेंगे।

ब्राह्मण के लिए यह पक्षि-यान था नवीन ही। वे डरते थे। जोर से आगे बैठे सखा को दोनों हाथों से पकड़े थे। गरुड़ प्रत्येक रानी के प्रांगण में उतरते। वहाँ उनकी अर्घ्य, पाद्य, धूप, दीप से पूजा होती। नैवेद्य वे ग्रहण करते नहीं थे। केवल लेकर गरुड़ के आगे रख देते थे और गरुड़ इस प्रसाद को क्यों छोड़ते। मालाएँ भी गरुड़ के गले में ही सुदामा डाल देते थे। गरुड़ अधिक हो जाने पर उन्हें उड़ते-उड़ते ही समुद्र में छोड़ आते थे। इस प्रकार सबके भवनों को पक्षि-यान से पवित्र करते-करते सुदामा को कई सप्ताह में छुट्टी मिली।

अन्त में उनके नटखट सखा ने उन्हें द्वारिका से

विदा किया, उनकी उसी फटी लंगोटी और अंगोछे में। कौशेय दुकूल वहीं छोड़कर उन्होंने अपनी फटी लंगोटी लगा ली थी और सखा ने कोई आपत्ति की नहीं थी। स्वागत सत्कार तो खूब हुआ; पर 'दक्षिणाभावे अक्षतम्' भी नहीं रहा। वे जो दो मुट्ठी तन्दुल ले आये थे, उसे भी छीनकर नटवर ने खा लिया था। खाली हाथ ही लौटे।

✲ ✲ ✲

ब्राह्मण ने रो-गाकर अपनी कुटिया के स्थान पर बने विराट् राजसदन में प्रवेश किया। वे तो द्वार से ही लौट जाते, पर उनकी पत्नी ने देख लिया और द्वार तक आकर वे अपने पतिदेव को ले गयीं। भीतर दासियों का मेला लगा था। ब्राह्मण ने पूछा 'कितनी हैं ये?' पत्नी ने हँसकर कहा 'सोलह हजार एक सौ आठ।'

इसी समय उन्हें भवन के पृष्ठभाग में कई मील लम्बे-चौड़े घेरे में गौएँ-गौएँ ही दृष्टि पड़ीं। सभी के खुर एवं सींग सोने से मढ़े थे। सब रत्न-जटित झूलों से आच्छादित थीं। सबके समीप सुन्दर दो-तीन महीने के बछड़े थे। सब हृष्ट-पुष्ट थीं।

ब्राह्मण ने उल्लसित होकर कहा-'कितनी सुन्दर गौएँ हैं!'

पत्नी ने मुस्कुराकर बताया 'हैं भी सोलह हजार एक सौ साठ।'

ब्राह्मण समझ गये यह सखा के पत्नियों की संख्या है। यह उन्हीं की दी हुई दक्षिणा है। जब सखा ने यह वैभव दिया तो उनकी पत्नियाँ ब्राह्मण को एक-एक गौ और ब्राह्मणी को एक-एक दासी क्यों न दें?

उन्होंने देखा-उनके घर में सोलह हजार एक सौ आठ का साम्राज्य है। थाली, लोटा, छाता, खड़ाऊँ, रत्न आदि सभी उसी संख्या में आ पहुँचे हैं। फिर भी वे द्वारिका की सजी हुई सोलह हजार एक सौ आठ थालियों, स्नान के उस सम्भार अथवा प्रणाम की उस अड़चन को भूल सकेंगे?

यहाँ की संख्याएँ तो वहाँ की प्रतीक हैं।

# दुर्गादास री अपणायत

– नारायणसिंह 'शिवाकर'

**डौढी दुरगादास री, रहै खुली दिन रात।**
**दीन दुखी फरियाद लै, जाय छतीसूं जात।।**

**पौळ गयां दुरगौ पुळक, सबनै दै सनमांन।**
**जाझा करै जुहारड़ा, मरजादा उनमांन।।**

**बूढौ ठाडौ मिनख जो, मारग में मिलजाय।**
**दुरगौ आदर देय नै, बाबौ कह बतळाय।।**

**गांव मांह किण ही घरे, जठै ब्याव मंड जाय।**
**रांध लापसी रावळै, आखौ घर निवताय।।**

**आंणां टांणां औसरां, जलम मरण री वार।**
**सुख दुख रौ सीरी सदा, कंवर दुरग सिरदार।।**

**ओरण में विचरै अभै, जीव जन्तु सब जात।**
**लांबी चौड़ी गउचरां, ढोर चरै दिन रात।।**

**राह लुणावै रूंखड़ा, गहरी छियां उगाय।**
**ऊनाळौ नित आवतां, प्याऊ पंथ भराय।।**

**जळ निरमळ टांकौ जठै, गैल लुणावा गांम।**
**पंथी तृषा बुझाय लै, बड़ हेटै बिसरांम।।**

**पांन फूल फळ मूळ दे, छाल छियां दे काठ।**
**प्रांण वाय खग आसरौ, विरछां दांन विराट।।**

**ब्रह्म रूप वड़ पीपळी, नींब नारायण जांण।**
**रोही हरिया रूंखड़ा, पाळै जीव प्रमांण।।**

# संगठन

– गिरधारीसिंह डोभाड़ा

संगठन को आज विविध रूप में लिया जा रहा है, या यों कहें आज इसका विविध अर्थ निकाला जा रहा है। जैसे–आज के राजनैतिक दल कहते हैं हमारी पार्टी या दल के संगठन को मजबूत बनाना है, फलां पार्टी का संगठन आज कमजोर हो रहा है, इत्यादि। किसी मंडली, सभा, संस्था, दल वगैरह को भी आज संगठन कहने लगे हैं। संगठन किसी जाति-प्रजाति दल आदि का समूह ही नहीं है। संगठन का रूप या कलेवर शास्त्रीय, वैज्ञानिक और सम्यक रूप में है। संगठन का कलेवर शाश्वत-सनातन है। संगठन का रूप धर्म से जुड़ा हुआ है। धर्म क्या है? सत्य, न्याय, नीति, प्रेम, करुणा, दया, क्षमा, समभाव, ईश्वरीय भाव इत्यादि सद्‌तत्वों, सद्‌गुणों के विचार और उनका आचरण ही धर्म है। जो ईश्वर प्राप्ति का मार्ग है। उपरोक्त बताए गये गुणों का, इन गुणों वाले लोगों का, अपने इन गुणों के अनुसार आचरण वाले लोगों का सद्‌मिलन ही सच्चा संगठन है जो शाश्वत है, धर्मानुकूल है।

वर्तमान युग में देखें तो मजदूरों का संगठन, बैंक कर्मियों का संगठन, सरकारी कर्मचारियों का संगठन, इसी तरह अनेक भिन्न युनियन अपने-अपने संगठन बताते हैं। वास्तव में उन्हें संगठन नहीं कहा जा सकता। वे तो अपनी माँगों को मनवाने के लिये अपने आश्रयदाता या रोजगार-दाताओं के सामने एक प्रकार के आन्दोलनकारियों का समूह है, संगठन कतई नहीं, अपनी माँगें पूर्ण होने पर बिखर जाते हैं। पूरी न हों तो बंट जाते हैं। इतिहास में कई बार संगठन हुए बताये जाते हैं लेकिन वे संगठन नहीं थे। वे या तो समूहों का संग्रह थे या भिन्न सेनाओं का एक जगह गठन थे, संगठन नहीं थे।

हम समुद्र मंथन की कथा पढते हैं, जिसके लिए देवों व असुरों का साथ हुआ था। दोनों पक्षों ने मिलकर समुद्र मंथन किया। मंथन तो सफल हो गया पर बाद में क्या हुआ? हेतु पूर्ण होते ही वह साथ, वह गठन टूट गया, आपस में लड़ पड़े। देवों और असुरों के बीच तो संघर्ष चलते ही रहे। देवों की सहायता के लिए पृथ्वी के कई पराक्रमी राजाओं की सेना गई और देवों को विजय दिलाकर लौटी। राजा दशरथ, राजा नहूष आदि राजा पहुँचे थे।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्रजी ने राक्षसों का नाश करने, असुर राज रावण का संहार करने के लिए वानर और भालु कुल के आर्यावृत के सभी क्षत्रियों का लोकसंग्रह किया। लंका पर विजर पाई और राक्षसों का संहार किया। भगवान राम की भगवत्ता का प्रभाव था कि पुनः वैसे संकट का अवसर उनके जीवन में नहीं आया, पर वे सभी जातियाँ संगठन में जुड़ी रही हों, ऐसा तो नहीं था। महाभारत के युद्ध जीतने के लिये कौरवों ने ग्यारह अक्षौहिणी तथा पांडवों ने सात अक्षौहिणी सेना का गठन किया। इतिहास का महाभयंकर नरसंहार हुआ मगर वहाँ भी संगठन का रूप तो नहीं था। भिन्न राजाओं की सेनाओं का जमावड़ा मात्र था। भगवान श्रीकृष्ण के स्वर्ग गमन के समय बचे हुए यादव आपस में लड़कर समाप्त हो गए लेकिन वे भी महाभारत के युद्ध से कुछ बोध लेकर संगठन नहीं कर पाए।

शक्तिशाली राजा लोग अपने आसपास या दूर-दराज के राज्यों को अपने आधीन करने हेतु दिग्विजय के लिए निकल पड़े थे परन्तु शाश्वत संगठन की भावना उनमें जागृत नहीं हुई थी या उसकी आवश्यकता को उन्होंने अनुभव ही नहीं किया था।

विदेशी बर्बर आक्रमणकारी बाबर के सामने युद्ध करने और भारत से उसे खदेड़ने के लिए मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह (राणा सांगा) के नेतृत्व में भारत के सभी राजपूत राजा एकत्रित होकर लगभग अस्सी हजार की सेना लेकर खानवा के मैदान में एकत्रित हुए। इस युद्ध में बाबर केवल बारह हजार की सेना लेकर आया था। युद्ध के मैदान से उसके पाँव उखड़ ही रहे थे कि अपने ही

कुछ लोगों की दगाबाजी से वह विजयी हुआ। मध्यकालीन इतिहास में यह सबसे बड़ा सैन्य संग्रह था।

महाराणा प्रताप ने लोकसंग्रह किया। अकबर जैसे शक्तिशाली शत्रु से लोहा लेने के लिये और मेवाड़ को उसके चंगुल से मुक्त करने के लिए बड़ी सैन्यशक्ति की आवश्यकता थी। कुछ छोटे राजा, जागीरदार, सामंतों को छोड़कर भारत के बड़े राजा तो अकबर के आधीन हो गये थे। महाराणा प्रताप वीर योद्धा के साथ-साथ कुशल लोकसंग्रहक भी थे। मेवाड़ की आम जनता में वे बड़े लोकप्रिय थे। सभी जाति के लोग उनसे प्यार करते थे। उनकी सेना में सोलंकी राणा पूंजा के नेतृत्व में जंगल और पहाड़ों के वासी भी शामिल थे। हाकिम खाँ सूरी उनकी सेना का एक सेनापति था। जैनधर्म का भामाशाह भी उनका एक सेनापति था। महाराणा ने सबकी सहायता और और कुशल युद्ध नीति से चित्तौड़ को छोड़कर पूरे मेवाड़ को अकबर से छुड़ाकर स्वतंत्र कर लिया था। बाद में औरंगजेब की क्रूरता से हिन्दुओं को बचाने के लिये एवं मातृभूमि मारवाड़ को स्वतंत्र कराने के लिए वीर दुर्गादास राठौड़ ने मारवाड़ व मेवाड़ राज्यों को एक दूसरे का सहायक बनाया। औरंगजेब के बड़े शाहजादे अकबर (द्वितीय) को अपने पक्ष में कर लिया था। मराठों को भी अपने साथ लाने का प्रयास किया। छत्रपति शिवाजी ने मराठों, महार जैसी पिछली जाति तथा ब्राह्मणों को अपनी सेना में लेकर औरंगजेब जैसे क्रूर और शक्तिशाली शत्रु से लोहा लिया।

उपरोक्त उदाहरणों से हम यह अवश्य कह सकते हैं कि महाराणा सांगा, महाराणा प्रताप, वीरवर दुर्गादास राठौड़ छत्रपति शिवाजी आदि लोक संग्रहक अवश्य थे, पर संगठन की नींव उस समय भी नहीं भरी जा सकी। हमारे इतिहास पर हम दृष्टि डालें तो हमारा इतिहास वीरता से भरा-पूरा और गौरवशाली अवश्य है लेकिन वह संगठन की दिशा में कार्य से रिक्त है। वास्तविक संगठन करने का प्रयास किसी ने किया ही नहीं।

उपरोक्त उदाहरणों में हमने जो लोकसंग्रह या सैन्य गठन की चर्चा की है, अपने मन को राजी करने के लिए उन्हें संगठन कह भी दें तो भी वे काल व परिस्थिति सापेक्ष थे। एक विशेष परिस्थिति में एक विशेष समस्या का हल निकालने के लिये किए गये प्रयत्न ही थे वे। उनका उद्देश्य उस परिस्थिति पर विजय पाने का ही रहता था, संगठन का शाश्वत उद्देश्य उनका नहीं था। काल, परिस्थिति और व्यक्ति सापेक्ष जो गठबन्धन होता है, वह उस उद्देश्य की पूर्ति के बाद या उसमें विफल होने के बाद टूट जाता है। संगठन के शाश्वत बने रहने के लिए काल, परिस्थिति या व्यक्ति की सापेक्षता आवश्यक नहीं। वह तो सनातन उद्देश्य के सापेक्ष होना चाहिए।

हमारे शरीर में हाथ, पाँव, मुँह, नाक, कान आदि विभिन्न अंग हैं। इसके अलावा मन, बुद्धि, अहंकार आदि भी विभिन्न भूमिकाएँ निभाते हैं। प्रत्येक अंग एक सूत्र में रहकर कार्य न करे तो शरीर की क्या स्थिति होगी? लेकिन प्रत्येक अंग एक सूत्र में कार्य करते हैं, नियंत्रित हैं तो शरीर संगठित है। इसी प्रकार संगठन में रहने वाले लोग अलग-अलग स्तर की बुद्धि वाले, अलग-अलग वातावरण में रहने वाले, अलग-अलग महत्त्वाकांक्षाओं को पालने वाले, अलग-अलग विचारों से प्रभावित होने वाले होंगे तो वह संगठन नहीं है।

कुछ सदियों से हमारे समाज की, देश और संसार की हालात के इतिहास का गहन अध्ययन करके तथा वर्तमान समय में परिस्थिति पर मनो मंथन करने पर युवावस्था से ही पू. तनसिंहजी को चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा नजर आया।वे अपनी आत्मा से पूछते रहते, इसका उपाय क्या हो? आत्मा ने ज्योति दिखाई और उपाय बताया 'संगठन'। शाश्वत उद्देश्य को लेकर शाश्वत गुणवर्ती लोगों का, सनातन धर्माचरण लोगों का संगठन। शाश्वत उद्देश्य मिला तो शाश्वत मार्ग भी मिला-सामूहिक संस्कारमय कर्मप्रणाली और साधन के रूप में जन्मा-श्री क्षत्रिय युवक संघ।

'संघेशक्ति कलौयुगे' के सूत्र को लेकर क्षत्रियों का, समाज का, संसार का श्रेय साधन करने के लिए श्री क्षत्रिय युवक संघ संगठन का कार्य कर रहा है। मजबूत

और टिकाऊ शृंखला बनाने के लिए एक ही धातु की मजबूत कड़ियों को जोड़ना पड़ता है। किसी शृंखला में एक कड़ी सोने की, एक कड़ी चाँदी की, एक कड़ी पीतल की, एक कड़ी लोहे की, इस प्रकार भिन्न-भिन्न गुण वाले धातुओं की होगी तो वह टिकाऊ नहीं होगी। टूट जाएगी, अस्तित्वहीन हो जाएगी। इसी प्रकार मजबूत संगठन के लिए समान गुण-प्रकृति-संस्कार वाले लोगों की आवश्यकता होती है। ऐसे लोगों का संगठन ही स्थायी रह सकता है। क्षत्रिय युवक संघ अपने कार्यक्रमों-शाखा, शिविरों द्वारा बालकों, बालिकाओं में सामूहिक संस्कारमय प्रणाली द्वारा समान-सनातन गुणों का निर्माण कर रहा है। ये गुण है-धर्म, सत्य, न्याय, नीति, प्रेम, करुणा, दया, दान, वीरता, दक्षता, शौर्य, कष्ट सहिष्णुता, तेजस्विता, कर्तव्यनिष्ठा, ईश्वरीय भाव इत्यादि। इन सद्गुणों को अपने आचरण में लाने का ज्ञान भी मिलता है और नियमित अभ्यास भी करवाया जाता है।

**हिन्दु के कुल के उजियारे बन क्षत्रिय आगे आवें**
**हम ऐसा संघ बनावें**

**क्षात्रधर्म के पालन के हित शक्ति खूब बढावें**
**निज शरीर को लोह बनाकर कड़ी-कड़ी जुड़ जावें**
**संघ भूमि पर नियमित जाकर ऐसी दीक्षा पावें**
**भाव कर्म को एक बनाकर व्यक्तिवाद बिसरावें**
**बिछुड़े हैं हम युग-युग से अब पुनर्मिलन है आया**
**संघ कार्य निष्काम भाव से करने में जुट जावें**
**हम ऐसा संघ बनावें**

पू. तनसिंहजी द्वारा इंगित व प्रेरित इन भावों से अपने आपको दृढ बनाकर कड़ी से कड़ी जोड़ें; शक्ति बढायें; नियमित अभ्यास द्वारा भावों से प्रेरित कर्म करते रहें, व्यक्तिवाद को न पनपने दें; बिछुड़े हुओं का मिलन कराकर निष्काम भाव से संघ कार्य करते रहें; ऐसा संगठन बनेगा वह परमपिता परमेश्वर की समयानुकूल माँग आधारित होगा। वही चिरस्थायी होगा, शाश्वत संगठन होगा।

श्री क्षत्रिय युवक संघ जो संगठन कर रहा है वह किसी प्राप्ति के लिए नहीं है बल्कि अपनी सत्ता के स्वामी परमेश्वर की माँग की पूर्ति हेतु अपना कर्तव्य समझकर, अपना स्वधर्म पालन कर रहा है। वह व्यष्टि और समष्टि के हित साधन के लिए कर रहा है, जो परमेष्टि की प्राप्ति का मार्ग है। क्षत्रिय युवक संघ का संगठन किसी जाति विशेष के लिए नहीं बल्कि पूरी मानव जाति के श्रेय साधन के लिये है। यों कहें कि पूरी सृष्टि का संतुलन बनाए रखने के लिए है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं। क्योंकि इसका उद्देश्य, मार्ग और साधन धर्मावलम्बी है। श्री क्षत्रिय युवक संघ जिस संगठन की बात करता है, वही एक मात्र संगठन है जो धर्माचरण के अनुकूल है। इसी संगठन से जीव मात्र का कल्याण सम्भव है। जय संघशक्ति!

---

**पृष्ठ 16 का शेष**

## चरित्र-निर्माण में संस्कारों का अवदान

प्रभावित करते हैं। नीति शास्त्र की दृष्टि से चरित्र जीवन में सबसे अधिक महत्त्व की चीज होती है।

यदि आज भी हम अपने बालकों को वेद-वर्णित संस्कार-विधि के अनुसार सुसंस्कृत करें तो बालक महान् बन सकते हैं। किन्तु विडम्बना है कि आज जब माता-पिता ही संस्कार शून्य हो गये हैं तो फिर बालकों के सुधरने की आशा कैसे की जा सकती है। किसी भी मनुष्य के चरित्र निर्माण के दो आधार हैं-एक सत्संगति तथा दूसरा सुसंस्कार। यदि संस्कार पूर्व जन्म के सत्कर्मों की अर्जित सम्पत्ति है तो सत्संगति वर्तमान जीवन की दुर्लभ विभूति है। संसार में चरित्रवान व्यक्ति समाज की शोभा हैं। सद्व्यवहार का जीवन में उतर आना ही सच्चरित्रता है। इसीलिए संस्कार द्वारा तराशी गई पत्थर की मूर्ति के विषय में किसी शायर का कथन है कि तराशा गया पत्थर ही खुदा बन जाता है-

**बुतो : शाबास, दुनिया में तरक्की इसको कहते हैं।**
**न तरशे थे तो पत्थर थे, जो तरशे तो खुदा निकले।।**

इस प्रकार चरित्र के निर्माण में संस्कारों का सर्वोपरि अवदान है। ❑

गतांक से आगे

# छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को

– स्वामी जगदात्मानन्द

## जब ज्ञानालोक का उदय होता है :

यह समझ पाना कठिन नहीं है कि एक अज्ञात शक्ति इस संसार को चलाती है। परन्तु हम उसको प्राय: अनदेखा करते रहते हैं। हम अपने जन्म के पूर्व और मृत्यु के बाद की बातें नहीं जानते। हम अपने सुख व दु:ख के कारणों को भी नहीं जानते। हम यह भी नहीं जानते कि इस पृथ्वी के सभी प्राणी कुछ सूक्ष्म नियमों द्वारा संचालित होते हैं। हम सोचते हैं कि जन्म से लेकर मृत्यु के बीच की अवधि ही महत्त्वपूर्ण है। परन्तु क्या हमारे साधारण ज्ञान के द्वारा जीवन में आने वाली जटिल समस्याओं का समाधान ढूँढ़ पाना सम्भव है?

ज्ञान का क्षेत्र विस्तृत तथा गहन होने पर हम सहज भाव से उस पथ की झलक पा लेते हैं, जिससे जीवन की अटल तथा अपरिहार्य समस्याओं का सामना किया जा सकता है।

अज्ञान ही समस्त दु:खों का मूल कारण है। अज्ञान के दूर हो जाने पर मन स्वच्छतर तथा दृढ़तर होता जाता है। हमारे पूर्वजों का दृढ़ विश्वास था कि वे शरीर नहीं बल्कि शरीर के निवासी (आत्मा) थे वे लोग मृत्यु की समस्या का कैसे सामना करते थे, महान कन्नड़ लेखक एम.वी. अयंगार ने एक उदाहरण के साथ बताया है-'मेरे सुपरिचित एक सम्भ्रान्त बुजुर्ग सज्जन जीवन की अन्तिम साँसें गिन रहे थे। सम्भवत: उनके जीवन के केवल दो ही दिन शेष थे। जब मैं उनके पास बैठा, तो वे बोले, ''गजेन्द्र अभी मुक्त नहीं हुआ।' उनका अभिप्राय था कि उनकी आत्मा अब भी भौतिक शरीर में आबद्ध है। उन वृद्ध व्यक्ति को मृत्यु उतनी भयावह नहीं लग रही थी। उन्हें ऐसा लग रहा था कि मृत्यु के माध्यम से उनके प्रभु उन्हें भौतिक शरीर के बन्धनों से मुक्त कर देंगे। वे शान्तिपूर्वक मृत्यु के क्षण की प्रतीक्षा कर रहे थे। सम्भवत: वे मृत्यु से मिलने को उत्सुक थे।'

अपरिहार्य का सामना करने का उनका ढंग निराला ही था।

## नेताओं की अज्ञानता :

शायद ही कोई इन उदात्त मूल्यों को हमारी शिक्षा-प्रणाली या हमारे पारिवारिक या सामाजिक आचार-संहिता में जोड़ने की सोचता है। फिल्मों व नाटकों के निर्माता, लेखक, शिक्षक आदि भी ऐसे विचारों की परवाह नहीं करते। हमारे सुधारक तथा राजनेता सोचते हैं कि लोगों में आपसी उत्तेजना, क्रोध या घृणा फैलाए बिना कोई अच्छा सामाजिक कार्य हो ही नहीं सकता। शोषित और निर्बल वर्गों में यह भावना घर कर गयी लगती है कि सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से उन्नत लोगों पर हमला या निन्दा करना ही उनके लिये आशा की एकमात्र किरण है। सच्चे धर्माचार्य इस विषय में जनता का मार्गदर्शन कर सकते हैं। परन्तु तथाकथित धार्मिक लोग भी अपने राजनीतिक मित्रों की ही भाँति अपनी श्रेष्ठता की भावना से अभिभूत रहते हैं। वे अन्य मतों व पथों के अनुयायियों की निन्दा करके समाज में असहिष्णुता तथा हिंसा फैलाते हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि सामान्य सरलमना ग्राम्य लोगों की अपेक्षा तथाकथित शिक्षित लोग चिन्ता, भय तथा बेचैनी से कहीं अधिक ग्रस्त होते हैं।

उस ज्ञान तथा शिक्षा का उपयोग ही क्या है, जो हमारे अवसाद को दूर करने में मदद नहीं कर सकती और हममें जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण नहीं उत्पन्न कर सकती? क्या यह एक उचित प्रश्न नहीं है? यदि वे लोग हमें भला और सुखी जीवन जीने हेतु प्रेरित नहीं करते, तो कम-से-कम वे हमें उस उत्तेजना और ईर्ष्या की नाली में तो न गिराएँ।

## इसका उत्तर यहाँ है :

चाहे कोई शिक्षित हो या निरक्षर, धनी हो या गरीब, अन्तर्मुखी हो या बहिर्मुखी, विवाहित हो या

अविवाहित और चाहे वह किसी भी धर्म या मत का अनुयायी हो-हर व्यक्ति अपने जीवन में सुख और समृद्धि हेतु प्रयत्नशील है। हमारी समस्याएँ, चिन्ताएँ एवं व्यथाएँ भिन्न-भिन्न हो सकती है, परन्तु अपने आन्तरिक संसाधनों के द्वारा हमें उन पर विजय प्राप्त करनी है। इस हेतु अपने दृष्टिकोणों, चिन्तन-प्रणाली तथा आचरण में बदलाव लाना आवश्यक है। घृणा, शिकायत, क्रोध और नकारात्मक दृष्टिकोण से तो हमारी समस्याएँ बदतर और दुर्जेय होती जाती हैं। सामाजिक समरसता से रहित स्वार्थपरता कभी भी शान्ति और सुख का मार्ग नहीं हो सकती। सद्‌गुणों के विकास तथा परिपक्वता के द्वारा ही व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा सामाजिक समस्याओं का हल निकाला जा सकता है। जीवन को नियंत्रित करने वाले सूक्ष्म नियमों में विश्वास; मन, आत्मा और जीवन-लक्ष्य के बारे में स्पष्ट समझ होना जरूरी है। धैर्य तथा अभ्यास से इन विषयों का गहनतर ज्ञान प्राप्त होता है। याद रहे कि दु:ख-कष्ट इस बात पर निर्भर नहीं करता है कि हमारे पास क्या है, अपितु इस पर कि हम स्वयं क्या हैं।

**मन की अथाह शक्ति :**

मन किसी रोग को पैदा कर सकता है या उसे ठीक भी कर सकता है। धैर्य, प्रेम, सहानुभूति, उदारता, नि:स्वार्थता आदि सकारात्मक गुण मानव-देह रूपी इस यंत्र के सभी अंगों को सुचारू, स्वस्थ तथा सुखद रूप से चलाते हैं। पर नकारात्मक विचारों से भय, चिन्ता, क्रोध, ईर्ष्या, निराशा और स्वार्थपरता का जन्म होता है, जो पूरे शरीर को प्रभावित करके उसे रोगी कर देते हैं। तुम्हारे मन में यह बात दृढ़तापूर्वक अंकित हो जाए, इस हेतु मैं दुबारा कहता हूँ- मन किसी रोग को पैदा कर सकता है या उसे ठीक भी कर सकता है।

प्रसन्नता, शान्ति, साहस, आत्मविश्वास, संकल्प-शक्ति आदि सकारात्मक मानसिक अवस्थाएँ शरीर को स्वस्थ रखने में किसी भी टॉनिक से अधिक प्रभावकारी हैं।

महर्षि वशिष्ठ ने कहा था कि जिस प्रकार रेशम का कीड़ा अपने लिए रेशम का कोया बनाता है, उसी प्रकार मन भी अपनी आवश्यकता के अनुसार शरीर का गठन करता है।

ज्ञानियों का कहना है कि मन ही मनुष्य के बन्धन और मुक्ति का कारण है।

विष और अमृत- दोनों ही विचार नामक पदार्थ से उत्पन्न होते हैं। अनेक लोग जाने या अनजाने ही विष पैदा कर लेते हैं। तथाकथित बुद्धिमान भी इस मूर्खता में फँस जाते हैं। यदि हम मन के स्वभाव तथा उसकी कार्य-प्रणाली को समझ लें, तो हम विष की जगह अमृत उत्पन्न कर सकते हैं। मन क्या है? पारिभाषिक जटिलाताओं में न जाकर हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि मन एक ऐसी शक्ति है, जिसमें असंख्य विचार, भावनाएँ, कल्पनाएँ और संकल्प आदि, संक्षेप में कहें तो इच्छा, क्रिया और ज्ञान, निहित रहते हैं। यह एक सूक्ष्म और जटिल शक्ति है, जो हमारे व्यक्तित्व को आकार देती है। इस शक्ति की मदद से हम अपने भाग्य को रूपायित करते हैं। हमारे सारे कर्म तथा उपलब्धियाँ मन में निहित भावनाओं, विचारों और कल्पनाओं के ही परिणाम हैं। एक प्रसिद्ध विचारक कहते हैं, 'यदि तुम एक माह तक रोजाना पाँच बार अपने विचारों का परीक्षण करो, तो पता चलेगा कि तुम किस प्रकार अपने भविष्य का गठन कर चुके हो। यदि तुम अपने कुछ विचारों को पसन्द नहीं करते, तो बेहतर होगा कि आज से ही उन विचारों तथा भावनाओं में बदलाव लाना आरम्भ कर दो।' अत: हमें अपने विचारों की दिशा में परिवर्तन लाने का प्रयास करना चाहिए। हमें अपने सभी विचारों और प्रयासों को जीवन के सम्मुख स्थापित उच्च आदर्शों के रूपायन में लगा देना चाहिए।

आजकल कंप्यूटर अत्यन्त लोकप्रिय हो रहे हैं। हमारा मन भी प्रकृति का एक अद्‌भुत उपहार है और यह कंप्यूटर से भी अधिक उपयोगी है। यदि हम मन में स्वस्थ एवं उदात्त विचारों तथा भावों को भरते रहें,तो इसके फलस्वरूप हमें प्रसन्नता, शान्ति और संतोष की प्राप्ति हो सकती है। लोग इस ओर ज्यादा ध्यान नहीं देते हैं। हमें ब्रह्माण्ड में एक व्यवस्था दीख पड़ती है, जिसे वेदों में ऋत

कहा गया है। ब्रह्माण्ड की सारी चीजों को यह ऋत ही नियंत्रित करता है। सूर्य, चंद्र, तारे, ग्रह-सभी आकाश में घूम रहे हैं। दिन और रात तथा विभिन्न मौसम आते-जाते रहते हैं। इन सबके पीछे एक सूक्ष्म व्यवस्था है। यह सुव्यवस्था केवल बाह्य जगत में ही नहीं है, हम इसे अन्तर्जगत में भी पाते हैं। दिल की धड़कन, श्वसन, रक्त-संचार, निद्रा तथा जागृति- सभी एक सुसंगत प्रक्रिया का अनुसरण करते हैं। एक उच्चतर नियम भी है, जो मनुष्य के सुख और दु:ख को नियंत्रित करता है। हर सफलता के पीछे अनुशासन और व्यवस्था होती है। हमारा जीवन अनुशासित तथा व्यवस्थित रूप से संचालित होना चाहिए। मानव-मन रूपी प्रकृति-प्रदत्त इस कंप्यूटर को अधिक उपयोगी बनाने के लिये इसमें निष्पक्ष निरीक्षण, नि:स्वार्थ दृष्टिकोण, लक्ष्योन्मुख प्रयास और आनन्द के भाव भर देने चाहिए। इसमें आलस्य, लापरवाही, एकाग्रता का अभाव, क्रोध और पूर्वाग्रहग्रस्त विचारों को भरने से यह बेकार हो जाता है। अत: मन में भरे जाने वाले विचारों तथा भावों के बारे में हमें बहुत सावधान रहना चाहिए।

## कालजयी सरल उपचार :

'Edgar Casey Reader' ग्रन्थ के 'Health in your Design' ('आपकी स्वास्थ्य-योजना') अध्याय से डॉ. रॉय कर्कलैण्ड द्वारा दिए गए उद्धरण के अनुसार रोगों को दूर करने के कुछ प्राचीन और आजमाए हुए सरल सिद्धान्त निम्नलिखित हैं -

1. संसार में सभी प्राणियों के प्रति सहानुभूति, प्रेम तथा कल्याण का भाव रखने से मनुष्य आन्तरिक आनन्द तथा प्रसन्नता प्राप्त करता है और इससे शरीर में सभी पाचक एंजाइमों के उचित एवं निर्बाध नि:सरण में सहायता मिलती है और व्यक्ति उनसे सम्बन्धित रोगों से मुक्त हो जाता है।

2. नि:स्वार्थता, कर्तव्यपरायणता एवं हार्दिक उदारता के भाव विकसित करके व्यक्ति शारीरिक रूप से सबल बनता है और मानसिक रूप से स्थिरता की उपलब्धि करता है और तब उसके बारम्बार बीमार पड़ने की सम्भावना नहीं रह जाती।

3. यदि कोई अहंकार त्याग कर मैत्री-भाव अपना ले और प्रसन्न रहने का अभ्यास करते हुए आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़े, तो वह आपसी घृणा-द्वेष के घावों को भर सकता है।

4. सहायता, उदारता तथा सहयोग से सद्गुणों को आत्मसात् करने से व्यक्ति को आन्तरिक सामंजस्य का भाव प्राप्त होता है, जिससे उसकी नसों तथा मांसपेशियों को राहत मिलती है। इससे जोड़ों की कठोरता चली जाती है और मनुष्य को शारीरिक और मानसिक ताजगी का अनुभव होता है।

5. यदि हम दूसरों के प्रति आत्मीयता एवं विश्व-बन्धुत्व के भाव को अपने रग-रग में आत्मसात् कर लें, तो चोरी-डकैती, हत्या, अन्याय और आदर्शों का अवमूल्यन रुक जाएँगे।

6. धैर्य ही लाभकारी है- इस सिद्धान्त को अंगीकार करके यदि हम धैर्य और सहनशीलता जैसे सद्गुणों का विकास करें, तो हमारे ज्ञान में वृद्धि होती है, जीवन प्राणवन्त हो जाता है और धरती स्वर्ग में परिणत हो जाती है।

7. 'बातें कम, काम ज्यादा' - हम नीति का पालन करने वाले जो लोग अनावश्यक वार्तालाप और व्यर्थ की चीजों से विरत रहकर सद्भाव के साथ अपने कर्तव्य में लगे रहते हैं।, उन्हें किसी अस्पताल में रोगी बनकर बिस्तर पर लेटे रहने की नौबत नहीं आती। उनके लिए सुखी जीवन कोरा दिवा-स्वप्न नहीं, बल्कि एक वास्तविकता बन जाता है।

8. उचित निर्णय और विवेक से हमें प्रतिकूल तथा अदम्य परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

9. नियमित प्रार्थना शारीरिक स्वास्थ्य का मार्ग प्रशस्त करती है। यह व्यक्ति के भीतर शक्ति और आत्मविश्वास का अजस्र स्रोत खोल देती है। फिर ऐसे लोग इस शक्ति और उत्साह को दूसरों में संचारित करने को प्रेरित होते हैं।

तुमने शिवलिंग देखा होगा। इसके ऊपर एक घड़े से धीरे-धीरे पवित्र जल गिरता रहता है। ठीक वैसे ही अध्यवसाय के द्वारा जब हम अपनी भावनाओं को प्रशमित करने में समर्थ हो जाएँगे, तो हमारा मन सर्वदा प्रसन्न रहेगा और एक प्रसन्न मन किसी भी औषधि की अपेक्षा बेहतर स्वास्थ्य प्रदान कर सकता है। औषधियों के सेवन से कुछ अप्रिय, प्रतिकूल प्रभावों की सम्भावना हो सकती है, परन्तु सद्-भावनाओं के विकास से स्वास्थ्य पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता।

**मन की शक्ति : एक महान सम्पदा :**

हमारे शास्त्र सद्‌भाव विकसित करने के विविध उपाय बताते हैं, जो हमारे स्वास्थ्य के लिए किसी भी टॉनिक से अधिक उपकारी है। प्राचीनकाल से ही हमारे देश के ऋषि-मुनियों ने काफी अध्ययन तथा अनुसंधान के द्वारा सद्‌गुणों एवं सद्-भावनाओं के विषय में अनेक तथ्यों की खोज की है। यदि हम उन्हें अपने जीवन में नहीं अपनाते, तो शान्ति तथा आत्मविश्वास प्राप्त करने की हमारी आशा एक स्वप्न मात्र ही रह जाएगी। यह बात सर्वविदित है कि नशीले पदार्थ मन में क्षणिक स्फूर्ति तो उत्पन्न करते हैं, परन्तु ये शरीर के साथ-साथ मन को भी दुर्बल बनाकर, मनुष्य को नैतिक रूप से बर्बाद कर देते हैं। शराब तथा मादक पदार्थों के आदी लोग स्वयं को, अपने परिवार को तथा अपने आसपास के समाज को दूषित कर डालते हैं। विशेषज्ञ अपने प्रामाणिक आँकड़ों से यह बात सिद्ध करते हैं।

यह सही है कि योगासन, विपस्सना आदि स्वास्थ्य-रक्षा तथा रोग-निवारण की दृष्टि से अत्यधिक उपयोगी हैं। परन्तु योगासन का अभ्यास करने वाले बहुत-से लोग इस तथ्य से अनभिज्ञ हैं कि योगशास्त्र ने मन की पवित्रता को काफी महत्त्व दिया है। गलत उपायों से धनवान बना व्यक्ति, मंदिर में भगवान को भेंट चढाकर आध्यात्मिक नहीं बन सकता। अपने अन्तर में क्रोध, चिन्ता, भय, घृणा तथा ईर्ष्या के भावों को प्रश्रय देने वाला व्यक्ति भले ही वैज्ञानिक बारीकियों के साथ शीर्षासन का अभ्यास करे, परन्तु वह अच्छा स्वास्थ्य कायम रख पाने में समर्थ नहीं होगा। आसन का फल स्थायी न होकर, केवल क्षणिक ही होगा।

अमेरिका में दीर्घकाल तक वेदान्त के प्रचारक रहे स्वामी सत्प्रकाशानन्द जी ने अपनी एक पुस्तक में अपने अनुभवों का विवरण दिया है। धर्म तथा साधना पर उनके व्याख्यानों को सुनने वाली एक महिला ने एक दिन भाषण के उपरान्त उनसे कहा, 'स्वामीजी, धर्म और साधना की अपेक्षा हमें मानसिक शान्ति तथा मनोबल को संरक्षित रखने का रहस्य जान लेना जरूरी है। यदि आप इसे प्राप्त करना सिखा दें, तो बड़ी कृपा होगी। हमें स्नायविक तनावों तथा क्षोभों के बन्धनों से खुद को मुक्त करने की परम आवश्यकता है।' अनेक लोग यह बात नहीं जानते कि मानसिक शान्ति और मनोबल को बचा रखने के लिये आध्यात्मिक पृष्ठभूमि अत्यन्त उपयोगी है।

अनेक प्रयोगों के द्वारा यह बात सिद्ध की जा चुकी है कि तनाव तथा क्षोभों से राहत पाने के लिए विश्राम जरूरी है। शोध के इसी क्षेत्र में अग्रगण्य, हैंस सीली का कहना है कि सच्चे विश्राम की अवस्था प्राप्त कर लेने के बाद मनुष्य सभी तरह के तनावों से मुक्त हो जाता है। वैसे सम्मोहन के द्वारा भी कुछ हद तक यह अवस्था प्राप्त हो सकती है, परन्तु वह क्षणिक होती है। इस अवस्था को स्थायी तौर से प्राप्त करने के लिए अध्यात्म-पथ का अनुसरण करना होगा। जब तक जीवन तथा सुख-दुःख के उद्‌भव के प्रति हमारे दृष्टिकोण में बदलाव नहीं आता, तब तक सच्ची शान्ति तथा विश्राम नहीं मिल सकते। अन्य साधनों से प्राप्त होने वाला विश्राम केवल सतही और अस्थायी होता है।

पाश्चात्य विद्वान सामाजिक अध:पतन के कारण बताते हुए कहते हैं- 'भौतिकवाद की धुन हिंसावृत्ति को बढ़ावा देती है। हमारा समाज, परिवार या अन्य किसी वस्तु पर नहीं, अपितु केवल सफलता पर ही आधारित है। सफलता के अभाव में लोग अवसाद-ग्रस्त हो जाते हैं। और अवसाद हिंसा तथा क्रूरता के पथ पर ले जाता है।

समाज में सहयोग तथा मित्रता के स्थान पर प्रतियोगिता तथा ईर्ष्या को प्रोत्साहित करने में ही इसके सुख का मार्ग निहित है- अपने इस दृढ़ विश्वास का पुरस्कार हमें हिंसा-वृद्धि के रूप में मिलता है। स्पर्धा की भावना से आक्रामकता और विद्वेष की भावना को बढ़ावा मिलता है। स्वस्थ प्रतियोगिता अच्छी हो सकती है। इससे उत्पादन तो बढ़ सकता है, परन्तु इस वृद्धि के लिए हमें कितनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है। इसकी कीमत है- सामान्य जनता पर अत्याचार। वास्तव में भौतिकवादी दृष्टिकोण तथा विद्वेषपूर्ण प्रतिस्पर्धा से परिचालित कोई भी व्यक्ति चिन्ताओं से मुक्त होकर मानसिक शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता। यदि हम मानव के अस्थिर स्वभाव, इच्छाओं तथा कामनाओं की पूर्ति हेतु उसके संघर्ष तथा अनजाने ही उसके वासना-प्रवाह में बह जाने और उसकी असहाय अवस्था पर विचार करें, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि केवल आर्थिक तथा तकनीकी प्रगति के द्वारा मनुष्य को बेहतर बनाने की आशा नहीं की जा सकती। जर्मन दार्शनिक शॉपेनहावर ने मनुष्यों की तुलना साही नामक प्राणियों से की है। यदि अनेक साहियों को किसी संकीर्ण स्थान में ढकेल दिया जाए, तो वे एक-दूसरे के नुकीले कांटों से बिंधकर बर्बाद हो जाएँगे। इसी प्रकार मानव की अति-स्वार्थपरता मानवजाति का विनाश कर सकती है। तो फिर मानव की स्वार्थपरता को कम करके उसे दूसरों को हानि पहुँचाने से रोकने का क्या उपाय है? विश्व-बन्धुत्व के भाव का आधार क्या है? इसकी प्रेरक-शक्ति क्या है? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, जिसका हमें समुचित उत्तर चाहिए। वही समाज श्रेष्ठ है, जिसके सभी सदस्य अपनी स्वार्थपरता पर अधिकाधिक अंकुश लगाए रखें। ऐसे समाज में ही एकता, शान्ति तथा सहयोग के भाव का विकास हो सकेगा। क्या आधुनिक समाज की भावना यही है? हम सर्वत्र ही अव्यवस्था, असहिष्णुता, घृणा और हिंसा का साम्राज्य देख रहे हैं। इसका क्या कारण है? इसका कारण है-असंयमित स्वार्थपरता। धन-सम्पदा का संग्रह, शक्ति तथा पद-प्रतिष्ठा की प्राप्ति तथा सस्ती लोकप्रियता की चाह- ये सब ही हमारे जीवन के उद्देश्य बन गए हैं। स्वेच्छाचार में लिप्त होना एक घिनौना भौतिकवादी दृष्टिकोण है और इससे स्वार्थपरता में वृद्धि होती है। अंग्रेज दार्शनिक हॉब्स ने कहा था-'मनुष्य नैतिक आदर्शों के प्रति द्वेष रखने वाला एक पशु मात्र है। शिक्षा तथा प्रशिक्षण देकर उसमें थोड़ा सुधार लाया जा सकता है।' यूनानी दार्शनिक प्लेटो कहते हैं, 'मनुष्य जन्म से ही विद्रोही है। मान लीजिए कि किसी व्यक्ति को इच्छानुसार अदृश्य होने की शक्ति मिल जाए, तो क्या कोई भी खजाना उससे सुरक्षित रह सकेगा? क्या उससे महिलाओं की लज्जा सुरक्षित रह सकेगी?' सामाजिक आक्रोश तथा बहिष्कार की आशंका और पुलिस के डण्डे के भय से ही बहुतेरे लोग भले तथा सज्जन बने रहते हैं। इन भयों के अभाव में मनुष्य अपने नैतिक मूल्यों को खो बैठेगा। दृढ़ इच्छाशक्ति तथा आत्मसंयम से सम्पन्न मुट्ठी भर लोग ही ऐसे मिलेंगे, जो किसी भी परिस्थिति में प्रलोभित नहीं होते। धर्म या आध्यात्मिक दृष्टिकोण अर्थात् ईश्वर तथा नैतिकता में विश्वास तथा सदाचार में पूर्ण निष्ठा की शक्ति ही मनुष्य को भ्रष्ट आचरण से दूर रखती है।

## सच्चा धर्म और मन :

सच्चा धर्म दो कार्य सम्पन्न करता है। एक तो, यह चंचल मन को प्रशिक्षित करके उसकी शक्तियों को एक उच्च आदर्श की ओर उन्मुख करता है। और दूसरा, यह मन को अन्य लोगों के साथ प्रेम व आदर तथा सामंजस्यपूर्वक रहना सिखाता है। इस प्रबुद्ध स्वार्थ से किसी की क्षति या शोषण नहीं होता। धन और काम ही सब कुछ नहीं है। मनुष्य जड़ पदार्थों का योग मात्र नहीं है। वह आत्मा है, जो अपने शरीर, मन और इन्द्रियों का उपयोग करता है। वह आत्मा ही हम सबके भीतर के 'मैं' पन का भाव है। वह 'मैं' ही कर्ता और भोक्ता है। मनुष्य को विश्वास करना चाहिए कि वह आत्मा है और अन्य लोग भी वही आत्मा हैं। 'हम सब आत्मा हैं'- यह विश्वास हमें अपने शरीर और इन्द्रियों का दास बनाने के बजाए, उनका स्वामी बनाता है।

**(शेष पृष्ठ 31 पर)**

# विचार-सरिता

## (चतुषष्टिक लहरी)

– विचारक

जगत कहे जाने वाले इस मिथ्या प्रपञ्च का अधिष्ठान ब्रह्म है। जब तक हम ज्ञानचक्षु से अधिष्ठान का अनुभव नहीं कर पाएँगे तब तक इस मिथ्या प्रपञ्च की निवृति नहीं हो सकती। जिस प्रकार मंद प्रकाश में पड़ी रस्सी में कल्पित सर्प की प्रतीति और भय तभी तक है जब तक रस्सी का ज्ञान नहीं है। रस्सी का बोध होते ही वह भासित सर्प और उसका भय तत्काल उस रस्सी में समाहित हो जाता है। ऐसे ही जब तक दृश्य जगत की सत्ता है, तभी तक जन्म-मृत्यु रूप संसार का बन्धन है। अधिष्ठान (ब्रह्म) का ज्ञान होते ही जगत कभी भी दुखरूप नहीं रह सकता।

मरुभूमि में सूर्य की किरणों के कारण प्रतीत होने वाली जल राशि में एक लहराता हुआ समुद्र प्रतीत होता है। प्यासा राहगीर या वहाँ रहने वाले पशु-पक्षी तभी तक उस जलराशि से प्यास बुझाने की कामना करते हैं जब तक उनको उस भूमि की विशेषता का ज्ञान नहीं है। जिस क्षण वो प्यासे प्राणी यह प्रत्यक्ष कर लेते हैं कि इस मरु-मरीचिका में भासित जल मिथ्या है, उसी क्षण से उसमें जल की खोज बन्द हो जाती है और उनकी समस्त भागदौड़ समाप्त हो जाती है।

इस मिथ्या भासित जगत में जिन महापुरुषों ने ब्रह्मभावना की है, उनको स्वर्ण से निर्मित आभूषणों में जिस प्रकार आकृति का महत्त्व गौण हो जाता है और मात्र सोना ही महत्त्वपूर्ण लगता है वैसा ही अनुभव होता है। एक पंडित जो गणेशजी का परम भक्त था, उसके पास स्वर्ण से निर्मित मोटी-सी गणेशजी की प्रतिमा थी और गणेशजी के वाहन मूषक की भी मूर्ति थी। दूर-दूर तक तीन साल से अकाल पड़ने के कारण पंडितजी की आजीविका प्रभावित हुई और शरीर निर्वाह हेतु गणेशजी और उनके वाहन मूषक को बेचने के लिये वह सुनार के पास गया और उन दोनों की अलग-अलग कीमत का आंकलन करवाया। तराजू पर बारी-बारी से दोनों मूर्तियों को तोला गया तो चूंकि वाहन वजन में भारी था अत: सुनार ने मूषक की कीमत ज्यादा और गणेशजी की कीमत कम बताई। इस पर भक्त नाराज होकर बोला, कि तुमने भांग खा रखी है क्या जो गणपति की कीमत कम और उनके वाहन की कीमत अधिक आंक रहे हो? इस पर सुनार ने कहा-यह तुम्हारे ईष्ट और उनके वाहन का भेद तुम्हारी दृष्टि में है, मेरी दृष्टि में तो सोना है। इसलिए जिसमें सोने का वजन ज्यादा है, उसी की कीमत ज्यादा है।

उपरोक्त दृष्टांत से यही सिद्ध होता है कि अज्ञानी की दृष्टि में सांसारिक पदार्थों की कीमत ज्यादा है पर ज्ञानी की दृष्टि में चींटी से लेकर ब्रह्म तक के सभी पिण्डों में जो चेतन तत्व है वह महान है और वह सब में एक है। उसमें कहीं कोई भेद नहीं है। कुत्ते में, चाण्डाल में, ब्राह्मण में और गाय में परमात्मा एक ही है, इसलिए न हेय है न ग्राह्य है।

जिस वस्तु की सत्ता है, अर्थात् जो सतरूप है उसका कभी अभाव नहीं होता। यह जो आकाश आदि पंचभूत और अहंकार के रूप में जो लक्षित हो रहा है, वह सब व्यवहार-दशा में जगत है, किन्तु परमार्थ दशा में ब्रह्म है। ब्रह्म के सिवाय जगत शब्द का दूसरा कोई वास्तविक अर्थ है ही नहीं। हमारे सामने यह जो दृश्य-प्रपञ्च दृष्टिगोचर होता है, वह सब अजर, अमर एवं अव्यय ब्रह्म ही है। शान्त ब्रह्म में शान्त जगत स्थित है। वास्तव में न तो दृश्य सतरूप है, न दृष्टा न दर्शन न शून्य न जड़ और न चित ही सदरूप है। केवल शान्त स्वरूप ब्रह्म ही सदरूप है और वह सर्वत्र एक रस व्याप्त है।

इस सब को समझने का एक ही तात्पर्य है कि परब्रह्म परमात्मा के साथ जीवात्मा की एकता का जो बोध है, वही यर्थाथ बोध है। ब्रह्म से भिन्न अपने आप के होने का जो भाव है वह अयथार्थ बोध है और उसी का नाम जीवत्व-बन्ध है। परब्रह्म परमात्मा सर्वत्र व्यापक होने के कारण पूर्ण है। जीवात्मा भी उससे अभिन्न होने के कारण पूर्व

है। इनमें जो चिद्‌गड़ ग्रन्थि के कारण भेद का भ्रम था उसका मिट जाना ही उनकी एकता है। वास्तव में जीवात्मा न तो कभी ब्रह्म से पृथक होता है और न वह कहीं से आकर ब्रह्म में प्रविष्ट ही होता है। वह तो ओतप्रोत एक ही है, बस अविद्या के कारण जीव अपने आपके अस्तित्व को भूल बैठा है। उसे अपने होने पने का ख्याल आ जाए तो वह निहाल हो जाता है। खोया कहे सो बावरा, पाया कहे जो कूर। खोया पाया कछु नहीं, चेतन है भरपूर।

यह तीनों अवस्थाओं तथा सब प्रकार का भेद-भ्रान्तियों का सदा के लिए शमन हो गया है, वह ब्रह्म शान्त स्वरूप कहा गया है। ब्रह्म दृष्टि प्राप्त होने पर जगत दृष्टि शान्त हो जाती है, इसलिए जगत को भी शान्त कहा गया है। मृतिका में घट की भाँति ब्रह्म में ही जगत की कल्पना हुई है, इसलिए वह उसी में स्थित है। घटादि उपाधियों के नष्ट होने पर घटाकाश, महाकाश आदि की जो महाकाश में प्रतिष्ठा होती है, वही आकाश में आकाश का उदय है। इसलिए जगत दृष्टि का निवारण होकर जो ब्रह्म भाव का साक्षात्कार होता है, वही ब्रह्म में ब्रह्म की प्रतिष्ठा है। इस प्रकार की अद्वैभावना जागृत करने के लिए साधक को सत्पुरुषों का संग व सत्शास्त्रों का अभ्यास करते रहना चाहिए जिससे कि हृदय की चिज्जड़ग्रन्थि का भंजन हो जाए और अपने वास्तविक स्वरूप की जानकारी हो जाए।

**ओम तत्सत्। ओम तत्सत्।। ओम तत्सत्।।।**

❑

**पृष्ठ 29 का शेष**

## छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को

इन्द्रिय-निग्रह से चित्तशुद्धि होती है और उससे मनुष्य आत्मसाक्षात्कार के पथ पर आगे बढ़ता है। आत्मबोध या अपने सच्चे स्वरूप की अनुभूति से समस्त दुःखों का नाश हो जाता है और व्यक्ति शाश्वत आनन्द प्राप्त कर लेता है। शास्त्रों तथा ऋषियों की यही सीख है। धर्म की शिक्षाओं का पालन करने पर वह सभी बाधाओं से हमारी रक्षा करके हमें जीवन के सनातन लक्ष्य की ओर ले जाता है। अपने सम्मुख कोई आध्यात्मिक आदर्श रखकर, उसके रूपायन हेतु प्रयत्नशील रहने पर हमारे जीवन का कायाकल्प हो जाता है। इसमें समय और सतत प्रयास की तो आवश्यकता है, परन्तु इस आदर्श की ओर बढ़ते रहने पर हम निश्चय ही शान्ति एवं आनन्द की अनुभूति करेंगे और अन्तत: शाश्वत शान्ति पा लेंगे। आध्यात्मिक आदर्श के बिना किसी भी भौतिक शान्ति तथा प्रसन्नता का अनुभव क्षणिक ही है और अन्तत: उससे केवल दुःख ही उत्पन्न होता है।

मनो-दैहिक गड़बड़ियाँ मन के विक्षोभ के फलस्वरूप होती हैं और वे शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालती हैं। अतएव, मानसिक स्वास्थ्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

मन की व्याधियों को दूर करने के लिए दवाइयाँ कारगर नहीं हो सकतीं। शुद्ध विचार तथा भावनाएँ ही मन को ठीक हालत में रखती हैं। योग-दर्शन और अन्य धार्मिक परम्पराएँ सभी को दस नियमों के पालन का निर्देश देती है। ये हैं- अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, संग्रह न करना, पवित्रता, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर से प्रेम।

**(क्रमशः)**

वही पौधा सघन वृक्ष हो सकता है जो समीर और लू, वर्षा और पानी में समान रूप से खड़ा रहे। उसकी वृद्धि के लिए अग्निमय प्रचण्ड वायु उतनी ही आवश्यक है जितनी शीतल मंद समीर। शुष्कता भी उतनी ही प्राण पोषक है जितनी आर्द्रता। चरित्रोन्नति के लिए भी विविध प्रकार की परिस्थितियाँ अनिवार्य है।

**- मुंशी प्रेमचन्द**

# बुढ़ापा ही जीवन है

**– सवाईसिंह धमोरा, से.नि. उप निरीक्षक**

आपने बचपन खेलकूद में गंवाया। कुछ समझ होते ही पढ़ना-लिखना शुरू कर दिया। जवानी शुरू होते ही सर्विस या धंधे के लिए चक्कर लगाने पड़े। फिर शादी हो गई, सन्तानें भी हो गई। अब इनकी लिखाई-पढ़ाई, विवाह-शादी और रोजगार की चिन्ता सताने लगी। यानी साठ साल की उम्र तक आपको कभी फुर्सत नहीं मिली, पूरा समय व्यस्तता में ही गुजारना पड़ा।

इन कामों के बाद फुर्सत मिलते ही आपको बुढ़ापे ने आ घेरा। यदि समझें तो खास जिम्मेदारी नहीं रही। परिवार वालों को भी सिवाय घर की चौकीदारी के आपकी कोई आवश्यकता नहीं रही। यदि आप सर्विस में थे तो भी वहाँ से आपको अनफिट करके घर भेज दिया। अब परिवार वालों को आपकी पेंशन का भले ही कुछ फायदा हो बाकी आप सब तरह से बेकार हैं।

फिर भी आप घर-परिवार के जबरदस्ती मोह में बंधे हुए हैं और सोचते हो कि घर मेरे द्वारा ही चल रहा है। आपकी यह सोच गलत है। संसार में कोई भी काम किसी के बिना रुक नहीं सकता। आप तो हैं ही क्या बड़े-बड़े राजा, महाराजा, साधु-महात्मा, नेता, मंत्री सब जैसे आये थे वैसे ही वापव चले गए, परन्तु काम वैसे ही चल रहा है। आप सोचो कि भगवान जैसा करता है, वैसा ही होता है। उसके आदेश बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता है। अत: सब तरह के मोह जंजाल को त्याग कर केवल उस भगवान के भरोसे छोड़ दो, वह जैसा चाहेगा और आपकी किस्मत में जैसा लिखा है वह होकर रहेगा इसमें कोई संदेह मत समझो।

घर परिवार का मोह छोड़कर घर की जिम्मेदारी संतान को प्रेमपूर्वक संभला दो, सब चिन्ताओं से मुक्त हो जाओगे, आपका जीवन सफल हो जाएगा। आपको जीवन में कभी महसूस ही नहीं होगा कि बुढ़ापा आ गया, कर्मों के फलों को तो भोगने ही पड़ेंगे, पर अन्य चिन्ताओं से आप मुक्त हो जायेंगे।

मैं आपको बेकार बैठने की सलाह नहीं दे रहा हूँ क्योंकि बेकार बैठने से कुछ दिन व्यतीत करना ही मुश्किल हो जाएगा। जब तक जीवन है, तब तक आपको व्यस्त रहना है, परन्तु स्वार्थ वास्ते नहीं।

घर की बजाए आप किसी सामाजिक संस्था, धार्मिक संस्था या किसी विद्यालय से जुड़ जाओ, अब तक आपने परिवार को सहयोग दिया परन्तु अब आखिरी थोड़ा समय सामाजिक कार्यों में ही व्यतीत करो, इसके लिए आपको धन की आवश्यकता नहीं है, यदि पास में है तो खर्च भी करो नहीं तो जैसी सेवा करने योग्य आप अपने को समझते हैं, वैसी ही करते रहें। यदि कुछ पैसे खर्च कर सकते हो तो गरीब परिवारों की मुसीबत के समय मदद कर दें। स्कूलों में प्रतिभावान विद्यार्थियों को पुरस्कार देकर, गरीब को पाठ्यसामग्री व ड्रेस आदि देकर उनकी मदद कर दो। उनके हार्दिक आशीर्वाद से अपना कल्याण हो जाएगा। यदि आप स्वेच्छा से पैसा खर्च करेंगे तो यह कम नहीं होंगे, बल्कि कई गुना किसी न किसी रूप में आपको मिल जायेंगे। पैसा खर्च करने वाले को दिवालिया और कंजूस को भी कभी पैसा वाला होते किसी ने बताया हो तो देख लो। इस प्रकार का कार्य करने से आपका समय भी आसानी से व्यतीत होता रहेगा और आत्मा भी प्रसन्न रहेगी। विश्वास न हो तो कुछ समय करके देख लो, अपने आप ही महसूस होने लगेगा।

यदि आप पेंशनर हैं या आमदनी का कोई अन्य स्रोत हो तो उसमें से कुछ हिस्सा इस कार्य में खर्च करते रहें। यदि आमदनी नहीं है तो इनसे सम्पर्क अवश्य बनाये रखें इससे आपको सम्मान मिलेगा और कार्यों में लगे रहने से आपका आराम से समय व्यतीत हो जाएगा, स्वस्थ रहेंगे, मन प्रसन्न रहेगा यही तो जीवन है।

महिलाओं को भी इस उम्र में घर-परिवार की पूरी जिम्मेदारी पुत्रवधू को संभला कर हर कार्य मुक्त हो जाना चाहिए। यह नहीं कि घर की चाबी पूरी जिन्दगी ही अपने नाड़े से बांधकर रखें। इनको भी बेकार नहीं रहकर घर के छोटे-मोटे कार्य में जो वे आसानीपूर्वक कर सकें, उनमें सहयोग करना चाहिए। घर में छोटे बच्चों से प्यार-दुलार करते रहें। उन्हें खिलाते-पिलाते रहें, इससे आपका मन भी बहल जाएगा, मन प्रसन्न होगा तथा बहुएँ भी खुश रहेंगी। आप अपने बुढ़ापे को भूल जाएँगे, परन्तु कर्मों का फल आपको भी भोगना पड़ेगा।

यदि आपके एक से अधिक पुत्र हों तो परिवार की सहमति से अपना मन पसंद एक बेटा ही चुनें, जिसके साथ आखिरी जीवन सुखपूर्वक व्यतीत हो सके। भूलकर भी महिनों में मत बंट जाना (अर्थात् बारी-बारी से पुत्रों के पास रहना), नहीं तो इसका परिणाम दु:खदायक होगा। संपूर्ण जीवन नरकमय हो जाएगा, कभी भी शान्ति नहीं मिलेगी। अत: ऐसी गलती मत करना।

समय बहुत थोड़ा है, इसे परोपकार में लगाओ, आप रुपयों को तिजोरी में बंद कर रख सकते हैं, मर्जी होगी तभी खर्च करेंगे, परन्तु समय तो अपने आप खर्च हो रहा है। इसे आप तो क्या कोई भी रोक नहीं सकता। जिस समय सांस पूरे हो जायेंगे उस समय आपको परिवार वाले भी नहीं बचा सकते और न ही आपका इकट्ठा किया हुआ धन बचा सकता है। वहाँ तो जाना ही पड़ेगा, समय को आप हँसी-खुशी में बिताएँ, चाहे रो धोकर, लड़-झगड़कर व्यतीत करें, उसे तो बिताना ही पड़ेगा। अत: बुढ़ापे में संतोष, शान्ति, प्रेम का व्यवहार रखोगे तो आपको घर स्वर्ग समान लगेगा और लड़-झगड़कर बिताया तो यही घर नरक हो जाएगा। यह घर ही आपका स्वर्ग/नरक है। इसको बनाए रखना भी आपके हाथ ही है, भगवान या किसी और को दोष देना गलत है। यह सब कुछ आप स्वयं देख रहे हैं। अत: मेरा तो आपसे यही निवेदन है कि अन्तिम समय को आप प्रेम, शान्ति से व्यतीत करें ताकि आगे कोई दु:ख महसूस न हो।

पृष्ठ 7 का शेष

## चलता रहे मेरा संघ

महापुरुष दुखियों के क्रन्दन को सुनकर उनका दुख दूर करने के लिये कार्य करते हैं। वैसा ही कार्य है श्री क्षत्रिय युवक संघ का। समाज की विषम स्थिति का क्रन्दन ही इसका आधार है। हम तो परवश राही हैं। यह कार्य करते हुए डूबने को तैयार, चलने को तैयार। मैं तो सदैव अपनों से घिरा रहता हूँ। मेरी संसार के बारे में स्वयं की कोई अनुभूति नहीं। संघ के उद्देश्य से बेहतर उद्देश्य नहीं कोई दिखाई दिया। मैं आपकी परिस्थितियों को जानता हूँ। आने का न आने का कारण भी जानता हूँ। सांसारिक कार्यों में आपके खलल पड़ता है, शायद आपको कभी बुरा भी लगता हो, पर मैं परवश हूँ। मुझे आपकी खुशी का ध्यान है।

लौटकर वही आता है जो हमने दिया है। आपका ही दिया आपको प्राप्त होगा। मैं तो आपकी आकांक्षाओं, आपके अरमानों में सहयोगी हूँ। आप यदि संघ को बुलंदियों पर देखना चाहते हैं और उसके लिये वैसी ही कार्यशक्ति लगाते हैं तो संघ बुलंदियों पर चढेगा। आप यदि संघ को गर्त में ले जाना चाहते हैं और वैसे कार्य करते हैं तो संघ गर्त में जाएगा। जो दिया वही मिलेगा। संसार को जो दिया वही मिलेगा। घृणा फैला रहे हों तो उनको प्रेम कैसे मिलेगा? घृणा ही लौटकर आएगी। अब हमको क्या करना है? वही जो हमने चाहा है। ध्यान रहे हमारी चाह के लिए जो हम लगाएंगे, उतना ही मिलेगा। सफलता चाहते हैं तो उसके अनुकूल ही लगन से जुटना पड़ेगा। धनी बनने के लिये धन ही लगाइये। लगन, तत्परता और कर्मठता के साथ संघ कार्य में प्रभु हमें जुटाए, यही प्रार्थना है।

❑

# अपनी बात

हमारी स्मृति और हमारा ज्ञान जिस तरफ बह रहा है, उस तरफ न बहकर, उसकी तरफ बहने लगे जहाँ हमारी आत्मा है, जहाँ हमारी सत्ता है, तो हम एक नये आदमी बन जाएँ। उसके लिए प्यास जरूरी है। प्यास कोई भी नहीं दे सकता। पानी तो कोई भी दे सकता है पर प्यास कोई दूसरा नहीं दे सकता। और जब प्यास न हो तो पानी व्यर्थ हो जाता है। पानी हमेशा मौजूद है लेकिन प्यास सबके भीतर मौजूद नहीं है। प्यास हमें स्वयं ही पैदा करनी होगी।

कैसे प्यास पैदा होगी? प्यास पैदा होती है पीड़ा से, पीड़ा के किसी अनुभव से। जीवन में बहुत पीड़ा है, बहुत दुख है, लेकिन इस दुख को हम भूलने के उपाय खोजते हैं। हमारे समाज की आज पतनावस्था है। जिन्होंने आदर्श चरित्र के अनेक प्रमाण संसार को दिए। जिनकी छत्रछाया में सनातन संस्कृति फली-फूली, उस समाज की आज की स्थिति पर कोई गंभीरता से विचार करे तो दुख पैदा हुए बिना नहीं रहेगा। लेकिन उस दुख से हमारे अन्तर में पीड़ा पैदा हो ऐसा नहीं होने देते। अगर दिन प्रतिदिन जो हमारे समाज में और जो हमारे समाज के साथ घटित हो रहा है उसको देखकर भीतर पीड़ा उत्पन्न नहीं होती तो कभी समाज की स्थिति सुधारने की प्यास पैदा नहीं होगी। यदि हमारी चेतना की आँखें खुली हैं तो समाज की स्थिति देखकर पीड़ा अवश्य होगी और वह पीड़ा ही इस स्थिति को सुधारने की प्यास पैदा करेगी।

जीवन में जो समस्याएँ हैं हम उन्हें गौर से देखें तो एक असंतोष, एक जागरण, एक प्यास पैदा हो सके। यदि हम उन्हें झुठलाने की कोशिश करें, भूलने की कोशिश करें और थोड़ा-सा विचार करके शान्त हो जाएँ, तो जीवन हमारे अन्दर उतना दंश पैदा नहीं करेगा जो कि हमें जगा दे, हमारी नींद को तोड़ दे। नींद को तोड़ने के लिये जरूरी है कि जीवन के दुख का भाव बहुत तीव्र हो जाए। हम सपना देखते हैं। यदि सुखद सपना है तो सपना टूटना आसान नहीं होता। लेकिन यदि हम कोई दुखद सपना देख रहे हों, किसी पहाड़ से गिर गए हों और कोई पत्थर हमारे ऊपर गिर पड़ा हो, तो सपना ज्यादा देर नहीं चलता। टूट जाता है। जीवन में भी हम जो सोए हुए हैं उनमें से कोई दुख में ही जागते हैं। इस दृष्टि से दुख एक वरदान है यदि हम देख पाएँ तो अन्यथा दुख एक अभिशाप है यदि हम उसे भुलाने की कोशिश करें तो। सारा जीवन दुख से भरा हुआ है लेकिन हम अपने छोटे-छोटे सुखों में दुख को भुलाने का उपाय कर लेते हैं और अपनी आँखें बन्द कर लेते हैं। तब प्यास पैदा नहीं होती। फिर संगठन की, ईश्वर की, आत्मा की हम बातें करते हैं, वे सब व्यर्थ हैं। उनसे हमारे भीतर कोई गहरी आकांक्षा पैदा नहीं होती। हमारा संस्कार, हमारी शिक्षा, हमारी संस्कृति की बातें हम करते हैं दोहराते हैं पर उनसे कोई आकांक्षा पैदा नहीं होती जिससे कि हमारे जीवन में पीड़ा को पैदा करने और बनाए रखने की क्रांति घटित हो जाए। क्रान्ति के लिए जरूरी है कि जिस भवन में हम बैठे हैं, उसमें यदि आग लग जाए और हमें मालूम हो जाए तो फिर बाहर जाने का रास्ता नहीं पूछेंगे, नहीं पूछेंगे कि कैसे बाहर निकलूं, बस बाहर निकलने का प्रयास प्रारम्भ कर देंगे। इसी तरह अगर हमें दिखाई पड़ जाए कि संसार में व्यक्ति को सांसारिकता में उलझाने की आग लगी हुई है और जीवन दुख से भरा है, तो आकांक्षा पैदा होगी जीवन को ऊपर उठाने की। हमारे भीतर एक क्रान्ति सम्भव हो जाएगी। दुख कहीं से लाना नहीं है, चारों तरफ मौजूद है। सच तो यह है कि हम स्वयं ही प्रतिक्षण मरते जा रहे हैं। अपने पर विचार करें तो हम काफी मर चुके हैं। जितने दिन हमारे निकल गए, उतने ही हम मर गए। लेकिन इसका हमें बोध नहीं है। यदि यह बोध लेकर हम इस पीड़ा को पैदा करें कि क्या मैं इस जीवन को सार्थक बना पाया? नहीं, तो जुट जाऊँ कर्तव्य पथ पर बढने में, बिना रुके, बिना विश्राम, निरंतर चलता रहूँ इस संघ कार्य के मार्ग पर।

❑

सर्वोदय

मेहनत आपकी मार्गदर्शन हमारा...

# सर्वोदय

## अकादमी

**सभी नये बैच प्रारम्भ**

सुबह - दोपहर - सायं

नगेन्द्रसिंह भाटी (जोधपुर)

SI | कॉनिस्टेबल | RAS | पटवारी | REET L-1 L-2

सदर थाना, डूंगरपुर Call : 8824616606

ब्रांच : हिरणमगरी सेक्टर 04, उदयपुर


कुर्वन्नेवेह कर्माणि

क्षत्रिय

हीरक जयंती वर्ष 2020-21

**कोरोना काल** की विपरीत परिस्थतियों में भी **श्री क्षत्रिय युवक संघ के हीरक जयन्ती वर्ष** का राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र आदि स्थानों पर चल रहे प्रचार-प्रसार के लिये सभी संघ बंधुओं के अथक प्रयास हेतु हार्दिक शुभकामनाएं।

निवेदक - पवन सिंह बिखरनिया

## श्री क्षत्रिय युवक संघ के मेवाड़-वागड़ मेवाड़-मालवा के स्वयंसेवकों द्वारा बधाई और उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाएं।

डॉ. विक्रम सिंह पुत्र श्री भवानी सिंह जी मुंगेरिया द्वारा पेसिफिक मेडिकल कॉलेज उमरड़ा उदयपुर से **MBBS** पूर्ण करने पर हार्दिक बधाई एवं उज्ज्वल भविष्य की कामनाएं

डा. हिमानी सोलंकी पुत्री श्री भगवान सिंह जी बडोली पेसिफिक मेडिकल कॉलेज उदयपुर से **एमबीबीएस** किया इससे पूर्व सोफिया अजमेर सेंटपॉल भीलवाड़ा एवं सेंट पाल स्कूल निंबाहेड़ा में पढ़ाई पूरी की।

## राजपूत छात्रावास जयपुर के सदस्य शिवराज सिंह जाखल 51वीं रैंक, राघवेंद्र सिंह मांझी 99वीं रैंक और भंवर जितेन्द्र सिंह कुकनवाली 600वीं रैंक RAS 2018 में चयन होने पर समस्त राजपूत छात्रावास परिवार की तरफ से बहुत बहुत बधाई और हार्दिक शुभकामनाएं।

शिवराज सिंह जाखल
51वीं रैंक

राघवेंद्र सिंह मांझी
99वीं रैंक

भंवर जितेन्द्र सिंह कुकनवाली
600वीं रैंक

-: शुभेच्छु :-

विजय सिंह गोरीसर, प्रदेश संयोजक/युवा प्रदेशाध्यक्ष राष्ट्रवादी जनलोक पार्टी ( सत्य ), राजस्थान, लक्ष्यदीप सिंह राठौड़ ( भमसा ) पूर्व अध्यक्ष-पारीक कॉलेज, जयपुर, नटवर सिंह किशनपुरा, युवा नेता, विधानसभा क्षेत्र-आमेर, सुरेंद्र सिंह बछवारी पार्षद/युवा नेता-सूरतगढ़, सुमित सिंह बाढ़ां की ढ़ाणी, प.स.सदस्य-खेतड़ी, गजेन्द्र सिंह बाघोली, सुदेकेलजी कंस्ट्रक्शन कम्पनी, संजय सिंह बावड़ी, श्री करणी इंद्रेश, खातीपुरा, तपेन्द्र सिंह रामपुरा, अरुण सिंह त्रिलोकपुरा, अम्बे कंस्ट्रक्शन कम्पनी, सुरेन्द्र प्रताप सिंह महरोली, कृषि और भू सम्बंधित व्यवसाय, जितेंद्र सिंह तंवर, राम सिंह लिसाडिया, प्रवीण सिंह महलाना, रूपेंद्र सिंह धमोरा, लोकेंद्र सिंह रायथलिया, छात्र नेता राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, डेनपाल सिंह दिवराला, छात्र नेता राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राहुल सिंह सिन्सिया, कर्मवीर सिंह गेलासर, भरतसिंह खारिया, करण सिंह किनसरिया एवं समस्त राजपूत छात्रावास, जयपुर परिवार के सदस्य।


अगस्त, सन् 2021
वर्ष : 58, अंक : 08

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2020-22



**संघशक्ति**
ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org


श्रीमान्.......................................................

.......................................................

.......................................................


स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह